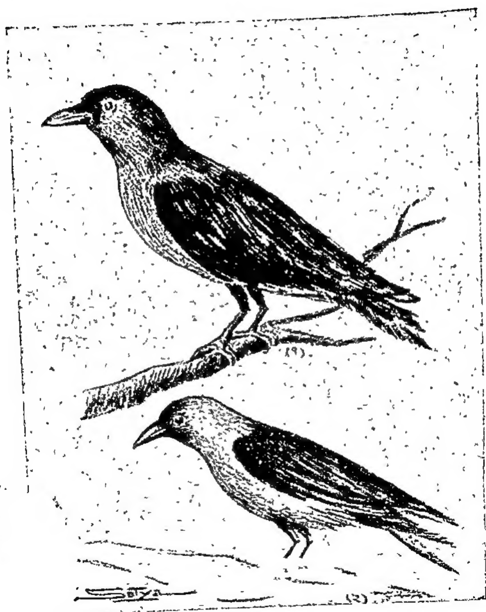
प्रकाशक—
नवयुग-साहित्य-मन्दिर,
पोस्ट बक्स ७८,
दिल्ली

मुद्रक—
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस
नया बाज़ार, दिल्ली

प्रकाशक—
नवयुग-साहित्य-मन्दिर,
पोस्ट बक्स ७८,
दिल्ली

मुद्रक—
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रे[स]
नया बाज़ार, दिल्ली

पक्षी-परिचय—



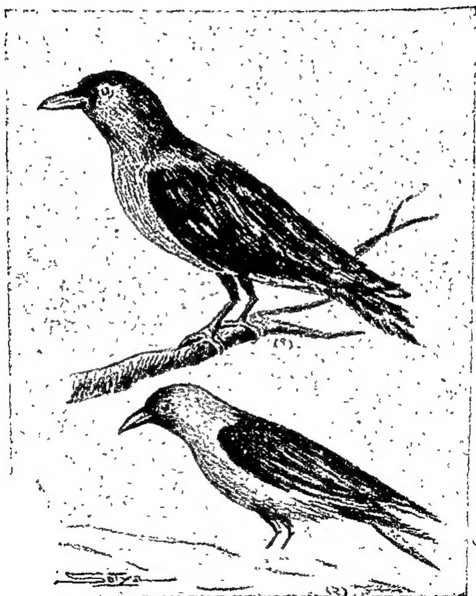
कौआ

(१) बड़ा (२) साधारण

भी करता है, डाका भी डालता है। लपट-झपट, लूट-खसोट में शायद ही कोई पक्षी उसकी बराबरी कर सके। मनुष्य की तो वह हानि-मात्र करता है, पर छोटी-छोटी चिड़ियों का सर्वनाश कर डालता है। किसी के अंडे ले जाकर हज़म कर जाता है, तो किसी के बच्चे। उसके खाद्य पदार्थों की सूची देना असम्भव है। मनुष्य के खाने-पीने की चीज़ों में बहुत कम ऐसी होंगी जिनसे कौए को कोई परहेज़ हो। पर यह तो मनुष्य से भी कहीं आगे बढ़ जाता है, और संसार में सर्वभक्षी कहलाना चाहता है। रोटी-दाल, भात-तरकारी, पूरी-कचौरी, मलाई-मिठाई, फल-फूल, मांस-मछली, कीड़े-मकोड़े, ढोले-गुबरेले, कहाँ तक गिनावें। जो कुछ सामने आगया उसीको हज़रत ने चट से पेट में डाल लिया। किसानों को कौए बहुत नुक़सान पहुँचाते हैं। मक्का, मूँगफली और कहीं-कहीं धान की फ़सल का भी नाश कर बैठते हैं। आम, अंजीर, शहतूत तथा दूसरे फलों पर भी इनके ऐसे ही हमले होते रहते हैं। धान्य-रक्षा के लिये किसान तरह-तरह की तदबीरें करते हैं, मगर ऐसे ढीठ चोर से काम पड़ने पर उन्हें पूरी कामयाबी कब हो सकती है?

फिर भी हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि जहाँ कौओं के काले कारनामों की इतनी लंबी सूची है, वहाँ उनसे हमारी थोड़ी भलाई भी होती है। जब कभी टिड्डी-दल किसी गाँव या फ़सल पर टूट पड़ता है, और किसानों में त्राहि-त्राहि मच जाती है, तब कौए उन उपद्रवी कीड़ों की संख्या घटाकर कुछ सहायता ज़रूर पहुँचाते हैं। पर टिड्डियों की संख्या इतनी अधिक होती है कि कौओं के घटाये वह

पक्षी-परिचय—



कौआ

पर घोंसला बनाने का काम प्रायः मादा ही करती है। साधारण कौओं का घोंसला उतना अच्छा नहीं होता, जितना बड़े कौओं का। इसके लिये खासकर डण्ठल और टहनियां जुटाई जाती हैं, और भीतर नरम घास या बालों का बिछावन किया जाता है। बाल कभी तो घोड़े की पूँछ के होते हैं, कभी मनुष्य के सिर, दाढ़ी या मूँछ के। सम्भव है, कौए के घोंसले में लम्बा-सा बारीक तार का टुकड़ा या किसी के चश्मे का सुनहला फ्रेम भी मिल जाय। प्रायः दो दिन इस काम में लगते हैं, फिर मादा अण्डे देती है। इसका समय जनवरी से मई तक है। उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण में कौआ कुछ देर से अण्डा देता है। अण्डों की संख्या प्रायः चार-पाँच होती है, पर इसमें कमी-बेशी भी हो सकती है। इनके रंग में बड़ी विचित्रता होती है, पर इनकी ज़मीन प्रायः नीली-हरी या फ़ीरोज़ी रहती है। अण्डा देने के बाद कौए अपने घोंसले को सूना नहीं छोड़ते। दूसरी चिड़ियों के अण्डे चुराने में वे स्वयं सिद्धहस्त होते हैं, इसलिये उन्हें डर बना रहता है कि कहीं हमारे अंडे भी चोरी न चले जायँ!

बच्चे निकल आये, उड़ने लायक हो गये, फिर कौओं ने घोंसले को सलाम किया और पेड़ की डाल पर रात बिताने लगे। साधारण समय में आप सैकड़ों कौओं को प्रायः एकही बग़ीचे में या आस-पास के वृक्षों पर विश्राम करते हुए पावेंगे। अपने-अपने वृक्ष की प्रत्येक को पहचान रहती है। सन्ध्या होते ही वह अपनी जगह पहुँच जाता है और थोड़ी देर तक कांव-कांव करके सो जाता है। इस प्रकार एकत्र सोने की कौओं को और कुछ दूसरी चिड़ियों को एक खास

अधिक काए रहते हैं। ये वनवासी नहीं होते। जंगल में औरों के लिये मंगल हो सकता है, परन्तु कौओं के लिये नहीं। अनादि काल से यह धृष्ट पक्षी आदम के ही दरबार का टुकड़खोर चला आता है।

इसकी हुलिया देने की कोई ज़रूरत नहीं। इसकी शक्ल-सूरत जैसी होती है, आप सभी जानते हैं। चोंच लम्बी और कड़ी होती है। पैर बहुत मज़बूत। कुछ लोगों का खयाल है कि इसके पुतली एकही होती है, जो आवश्यकतानुसार दोनों आँखों में घूमा करती है। और, जैसा रंग-रूप वैसी ही बोली। क्या किसी दूसरे पक्षी की भी इतनी कर्कश बोली होती है ?

कौआ किसी को अच्छा नहीं लगता। हमारे कवियों ने तो उसे खूब ही जली-कटी सुनाई है। रंग-रूप चाहे जो होता, पर गले में थोड़ी-सी भी मिठास होती, तो न तो तुलसीदासजी यह लिख जाते कि:—

वायस पालिय अति अनुरागा,
होइ निरामिष कबहुँ कि कागा ?

और न बिहारीलालजी यह तीर छोड़ जाते कि:—

अरे हंस ! या नगर में जैयो आप विचारि;
कागन सों जिन प्रीति करि, कोयल दई बिडारि !

पर कौआ इन बातों की कोई परवा नहीं करता। कोई कुछ कहे, कोई कुछ लिखे, उसे तो अपने काम-से-काम ! उसका तो

कोयल देखने में काली कुरूप होती है। धूर्त ऐसी, कि कौए के भी कान काट लेती है। फिर भी अपनी मधुमयी वाणी के कारण उसने सबके हृदय में ऐसा प्रेम का स्थान कर लिया है कि जिसे देखिये वही उसकी प्रशंसा कर रहा है, उसे आशीर्वाद दे रहा है। ज्यों-ज्यों गर्मी बढ़ती है, इसका स्वर ऊँचा होता जाता है। दिन हो या रात, मन की मौज होते ही संगीत-सुधा बरसाने लगती है। प्रायः पौ फटने से पहले तो यह बड़ी ही उमंग से गाती है।

गाने में यह पक्षियों के बीच उस्ताद है, तानसेन है,—यह आप सुन चुके। अब इसकी दूसरी तरह की उस्तादी का हाल सुनियेः—

इस जाति के पक्षियों की यह विशेषता है कि वे प्रायः अपने अण्डे दूसरी चिड़ियों के घोंसलों में रख आते हैं। कोयल अपने अण्डे आप नहीं सेती। कौओं से बेगारी कराके अपना काम निकालती है। उनके आगे इसकी ज़ोर-ज़बर्दस्ती तो चलती नहीं, इसलिये उन्हें धोखा देकर ही उनसे यह बेगार कराती है।

नर और मादा पहिले यह निश्चय करते हैं कि किस कौए की आँखों में धूल झोंकना होगा। निश्चय होते ही नर उसी पेड़ पर जा बैठता है और अपना राग अलापने लगता है। कौए कोयल से यों ही जलते हैं। देखते ही उस पर टूट पड़ते हैं और उसका पीछा करने लगते हैं। क्रोध के मारे थोड़ी देर के लिये अपनी सारी होशियारी खो बैठते हैं और घोंसले को सूना छोड़कर नर, मादा दोनों उस कोयल के पीछे निकल पड़ते हैं।

भी करता है, डाका भी डालता है। लपट-झपट, लूट-खसोट में शायद ही कोई पक्षी उसकी बराबरी कर सके। मनुष्य की तो वह हानि-मात्र करता है, पर छोटी-छोटी चिड़ियों का सर्वनाश कर डालता है। किसी के अंडे ले जाकर हज़म कर जाता है, तो किसी के बच्चे। उसके खाद्य पदार्थों की सूची देना असम्भव है। मनुष्य के खाने-पीने की चीज़ों में बहुत कम ऐसी होंगी जिनसे कौए को कोई परहेज़ हो। पर यह तो मनुष्य से भी कहीं आगे बढ़ जाता है, और संसार में सर्वभक्षी कहलाना चाहता है। रोटी-दाल, भात-तरकारी, पूरी-कचौरी, मलाई-मिठाई, फल-फूल, मांस-मछली, कीड़े-मकोड़े, ढोले-गुबरेले, कहाँ तक गिनावें। जो कुछ सामने आगया उसीको हज़रत ने चट से पेट में डाल लिया। किसानों को कौए बहुत नुक़सान पहुँचाते हैं। मक्का, मूँगफली और कहीं-कहीं धान की फ़सल का भी नाश कर बैठते हैं। आम, अंजीर, शहतूत तथा दूसरे फलों पर भी इनके ऐसे ही हमले होते रहते हैं। धान्य-रक्षा के लिये किसान तरह-तरह की तदबीरें करते हैं, मगर ऐसे ढीठ चोर से काम पड़ने पर उन्हें पूरी कामयाबी कब हो सकती है ?

फिर भी हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि जहाँ कौओं के काले कारनामों की इतनी लंबी सूची है, वहाँ उनसे हमारी थोड़ी भलाई भी होती है। जब कभी टिड्डी-दल किसी गाँव या फ़सल पर टूट पड़ता है, और किसानों में त्राहि-त्राहि मच जाती है, तब कौए उन उपद्रवी कीड़ों की संख्या घटाकर कुछ सहायता ज़रूर पहुँचाते हैं। पर टिड्डियों की संख्या इतनी अधिक होती है कि कौओं के घटाये वह

में पंचम स्वर शायद इसी की वोली से लिया गया है। कोकिल की कलित काकली पर कवि-कुल कितना विमुग्ध है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं।

जिस समय दूसरे पक्षी घोंसला बनाने की उधेड़-बुन में लगे रहते हैं या जिस समय अण्डा सेने में उनके प्रेम और धैर्य्य की परीक्षा होती रहती है, उस समय कोयल बस गाने में मस्त रहती है। कविता करने और गाने-बजानेवालों की प्रकृति ही कुछ और हुआ करती है। लेख और रचना में जो अच्छी-से-अच्छी बन्दिश बाँधता है, वह मामूली छप्पर भी नहीं बाँध सकता। जो दीपक-राग का अभ्यास करता है, उसे यह फ़िक्र नहीं रहती कि घर में दीया किस तरह जलेगा। कोयल का भी यही हाल है। यहाँ गाने से फ़ुरसत किसे कि घास इकट्ठा कर घोंसला बनावे और उसमें अण्डे देकर उनपर चुपचाप बैठा रहे। पर साथ ही कोयल चालाक भी परले सिरे की होती है, इसलिये अपना काम बिगड़ने नहीं देती। हमारे कितने ही कवि और गवैये भूखों मर जाते हैं, पर कोयल तो अपना बाल भी बाँका नहीं होने देती। अपना नहीं तो दूसरे का घर मौजूद है! अपने पास इतना समय नहीं कि अण्डों पर बैठें और बच्चों का लालन-पालन करें, पर जब बेगार काफ़ी तादाद में मिल जाती है, तब फिर कोयल क्यों घर के जंजाल में पड़े और अपना अमूल्य समय नष्ट करे?

यह प्रश्न किया जा सकता है कि कोयल अपना अण्डा कौए के घोंसले में पहुँचकर देती है या उसे और कहीं देकर वहाँ पहुँचा आती है? इस सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा

होता है, पर साधारण कौए का सिर्फ पिछला भाग। इसका धड़ या अगला भाग काला न होकर मटमैला या भूरा होता है। रंग-रूप में थोड़ा-सा अन्तर होने पर भी वड़ा और वातों में साधारण कौए के ही समान होता है। हाँ, यह ज़रूर है कि वड़ा होते हुए भी वह उतना वड़ा ढीठ नहीं होता। शरारत और ढिठाई में तो साधारण कौए ने सब से वाज़ी मारली है।

वड़े कौओं को न जाने क्यों चमकीली चीज़ों से वड़ा प्रेम होता है और मौक़ा पाते ही वे उन्हें ले उड़ते हैं। चाँदी की छोटी-मोटी चीज़ें अक्सर इस तरह ग़ायब हो जाती हैं। पर कौए उन्हें किसी काम में नहीं लाते। या तो कुछ दूर ले जाकर कहीं गिरा देते हैं, या कहीं थोड़ी मिट्टी खोदकर उन्हें गाड़ देते हैं।

ऊपर हम कौओं की शरारत की ओर इशारा कर चुके हैं। छोटे-छोटे पौधों को उखाड़ कर फेंक देना, फूलों को तोड़ कर ले उड़ना, दूसरे पशु-पक्षियों को विना मतलब चोंच से ठुकराकर नाकों दम करदेना—यह सब शरारत नहीं तो फिर क्या है ? जान पड़ता है, कि जब कौआ खाकर अघा जाता है, तब मनोरंजन के लिये ऐसी हरकतें करता फिरता है। आपके गाय-बैल अगर बोल सकते तो बताते कि ये कम्बख़्त उन्हें कभी-कभी कितना दिक़ कर डालते हैं।

क्या आपने कभी कौओं की पंचायत देखी है ? कौओं से यहाँ हमारा मतलब साधारण कौओं से है। वड़े कौए दलवन्दी से दूर रहते हैं, जिसे देखिये वही अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग

सहज स्वभाव है। लुटेरा ऐसा, कि मैना-जैसे पक्षी का आहार भी छीन लेता है। हुदहुद तो डर के मारे चीं-चपड़ भी नहीं करता और और अपना शिकार चुपचाप इसके हवाले कर देता है। सुनते हैं, कि मैना को डराने के लिए कभी-कभी यह शिकरे की सी बोली बोलता है, जिससे वह डरकर अपना शिकार छोड़ दे और भाग जाय।

भुजंगा बड़ा वीर पक्षी है; सभी से लड़ने को तैयार रहता है। घोंसला बनाने के दिनों में इसका मिज़ाज इतना गर्म रहता है, कि अपने वृक्ष पर या उसके आस-पास कौए या चील को देख ले, तो उसे ठुकराये बिना न रहे। बन्दर भी आ जायँ तो कुछ सीखकर जायँ। इसकी इसी वीरता से लाभ उठाने के लिए फ़ाख़्ता और पीलक प्रायः इसी की छत्र-च्छाया में आकर बसते हैं। इन ग़रीबों पर इसकी बराबर दयादृष्टि रहती है, और चिड़ियों में इसका आतङ्क ऐसा है कि कोई भी डाकू या लुटेरा उनके घोंसलों पर पैर रखने की हिम्मत नहीं करता। कहीं-कहीं इसे, औरों का रक्षक होने के कारण, कोतवाल कहते हैं। कौए या बन्दर चाहे जो करें, पर आपसे हमारी प्रार्थना है कि भुजंगे का घोंसला या उसके अंडे देखने की चेष्टा न करें। एक महाशय ने ऐसी चेष्टा की थी। नतीजा यह हुआ कि उसकी चोंच की ठोकर से उनका सिर फूटते-फूटते बचा! आख़िर कोतवाल साहब ठहरे!!

भुजंगा अपना घोंसला अप्रैल के लगभग बनाता है। इसके लिए वह किसी ऊँचे वृक्ष को चुनता है। घास-फूस, मकड़ी का जाला

पर घोंसला बनाने का काम प्रायः मादा ही करती है। साधारण कौओं का घोंसला उतना अच्छा नहीं होता, जितना बड़े कौओं का। इसके लिये खासकर डण्ठल और टहनियां जुटाई जाती हैं, और भीतर नरम घास या बालों का बिछावन किया जाता है। बाल कभी तो घोड़े की पूँछ के होते हैं, कभी मनुष्य के सिर, दाढ़ी या मूँछ के। सम्भव है, कौए के घोंसले में लम्बा-सा बारीक तार का टुकड़ा या किसी के चश्मे का सुनहला फ्रेम भी मिल जाय। प्रायः दो दिन इस काम में लगते हैं, फिर मादा अण्डे देती है। इसका समय जनवरी से मई तक है। उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण में कौआ कुछ देर से अण्डा देता है। अण्डों की संख्या प्रायः चार-पांच होती है, पर इसमें कमी-बेशी भी हो सकती है। इनके रंग में बड़ी विचित्रता होती है, पर इनकी ज़मीन प्रायः नीली-हरी या फ़ीरोज़ी रहती है। अण्डा देने के बाद कौए अपने घोंसले को सूना नहीं छोड़ते। दूसरी चिड़ियों के अण्डे चुराने में वे स्वयं सिद्धहस्त होते हैं, इसलिये उन्हें डर बना रहता है कि कहीं हमारे अंडे भी चोरी न चले जायँ !

बच्चे निकल आये, उड़ने लायक हो गये, फिर कौओं ने घोंसले को सलाम किया और पेड़ की डाल पर रात बिताने लगे। साधारण समय में आप सैकड़ों कौओं को प्रायः एकही बग़ीचे में या आस-पास के वृक्षों पर विश्राम करते हुए पावेंगे। अपने-अपने वृक्ष की प्रत्येक को पहचान रहती है। सन्ध्या होते ही वह अपनी जगह पहुँच जाता है और थोड़ी देर तक कांव-कांव करके सो जाता है। इस प्रकार एकत्र सोने की कौओं को और कुछ दूसरी चिड़ियों को एक खास

इसकी बोली बड़ी तेज़ होती है और यह देरतक लगातार बोलता रहता है। कभी-कभी तो यह 'हुट हुट' की ध्वनि निकालता है और कभी कभी 'कोक-कोक' की।

महोखा कीड़े-मकोड़े खाता है। कभी-कभी छिपकली या छोटे साँप इत्यादि भी। यह दौड़ने में तेज़ होता है, और प्रायः ज़मीन पर ही शिकार करता है। सर्द ज़मीन इसे ज़्यादा पसन्द है। पेड़ पर आप इसे गिलहरी की तरह उछलते-कूदते और शिकार पकड़ते पायेंगे। यह उड़ने में कमज़ोर होता है और प्रायः अकेला ही रहता है। कीड़ों या छोटे-छोटे जीव-जन्तुओं को यह पैर से दबाकर चीर डालता है।

गर्मी बीतने पर यह घोंसला बनाता है। उस समय नर और मादा दोनों बड़ा शोर मचाते हैं। यह भी देखने में आता है कि नर अपनी पूँछ और डैनों को फैलाकर मादा के सामने नाचता है। घोंसला बड़ा-सा होता है, और वह किसी ऊँचे वृक्ष पर या बाँसवाड़ी में तैयार किया जाता है। नीम, जामुन, ढाक इत्यादि की टहनियों और पत्तों से ही प्रायः यह अपना घोंसला बनाता है। घोंसले के ऊपर कभी-कभी छतरी रहती है, जिससे देखने में वह बड़े गेंद-सा मालूम होता है। जून से अगस्त तक इसके अण्डे देनेका समय है। अण्डा प्रायः डेढ़ इंच लंबा होता है। अगस्त-सितम्बर में आप महोखा के बच्चों को देख सकते हैं। जबतक वह सयाने नहीं हो जाते, घोंसला नहीं छोड़ते। जब उनके डैनों में कुछ सफ़ेद पर होजाते हैं, तब वह घोंसला छोड़ देते हैं।

तुलसीदासजी की रामायण पढ़नेवाले उनके नाम से अवश्य परिचित होंगे। गरुड़ के प्रश्न का उत्तर देते हुए आपने कहा था—

पर-उपकार, वचन-मन-काया,
सन्त सहज सुभाव खगराया !
सन्त सहहिं दुख पर-हित लागी ;
पर-दुख हेतु असन्त अभागी ॥

क्या ही अच्छा होता, यदि कौए अपने पूज्य पूर्वज के इस महान उपदेश का थोड़ा-बहुत भी पालन करते !

कौए का काँइयाँपन काफ़ी मशहूर है। चुस्ती-चालाकी में वह सब पक्षियों से आगे है। अण्डा सेने के समय वह आवश्यकता से अधिक चौकन्ना रहता है। फिर भी सृष्टि की लीला ऐसी विचित्र है कि ऐसे चोर-चाँई को भी दूसरी चिड़िया बात-की-बात में उल्लू बनाकर अपना उल्लू सीधा कर लेती है। इसका वृत्तान्त दूसरे प्रकरण में पढ़ने को मिलेगा।



भूरापन लिए हुए बादामी। कुछ पर सफ़ेद भी होते हैं। लम्बाई एक फुट से ज्यादा नहीं होती। चोंच और पैर कोयल की अपेक्षा छोटे हैं। नर और मादा दोनों देखने में एक से ही लगते हैं। इसकी एक उपजाति के ऊपर के सभी पर काले, और नीचे के सफ़ेद होते हैं। पूँछ के अन्त में भी कुछ पर सफ़ेद पाये जाते हैं।

पश्चिम में बीकानेर और पूर्व में ढाका—बस इन्हीं के बीच पपीहा मिलता है। न तो वह सिन्ध या पंजाब में पाया जाता है, और न आसाम में। सुनते हैं, कि बम्बई की तरफ़ भी पपीहा नहीं होता। संयुक्त प्रान्त और बिहार में यह साधारण पक्षी है। मद्रास प्रान्त में मिलता है, पर बहुत कम। काला पपीहा उत्तर भारत में सिर्फ़ बरसात के दिनों में पाया जाता है। उसके बाद दक्षिण की ओर चल देता है। एक बात ज़रूर है। जिन प्रान्तों में पपीहा साधारण पक्षी है वहाँ भी वह अदृश्य-सा रहता है। पत्तों की आड़ में रहना इतना पसन्द करता है कि हम उसे बहुत कम देख पाते हैं।

मगर पर्दे में रहकर भी वह अपनी बोली से संसार को अपने अस्तित्व की सूचना देता रहता है। दिन रात पी-पी रटता रहता है। इसकी बोली ने इसे हमारे देश के साहित्य में अमर कर दिया है। इसका स्वर क्रमशः तीव्र होता जाता है, और अन्त में सप्तम तक पहुँच जाता है। बोलते समय रात को पपीहों की शृंखला-सी बंध जाती है। एक की आवाज़ दूसरे के कान में पड़ते ही वह भी पी-पी करने लगता है। इस प्रकार दूर-दूर के पपीहे थोड़ी ही देर में "कन्सर्ट"

कोयल देखने में काली कुरूप होती है। धूर्त ऐसी, कि कौए के भी कान काट लेती है। फिर भी अपनी मधुमयी वाणी के कारण उसने सबके हृदय में ऐसा प्रेम का स्थान कर लिया है कि जिसे देखिये वही उसकी प्रशंसा कर रहा है, उसे आशीर्वाद दे रहा है। ज्यों-ज्यों गर्मी बढ़ती है, इसका स्वर ऊँचा होता जाता है। दिन हो या रात, मन की मौज होते ही संगीत-सुधा बरसाने लगती है। प्रायः पौ फटने से पहले तो यह बड़ी ही उमंग से गाती है।

गाने में यह पक्षियों के बीच उस्ताद है, तानसेन है,—यह आप सुन चुके। अब इसकी दूसरी तरह की उस्तादी का हाल सुनियेः—

इस जाति के पक्षियों की यह विशेषता है कि वे प्रायः अपने अण्डे दूसरी चिड़ियों के घोंसलों में रख आते हैं। कोयल अपने अण्डे आप नहीं सेती। कौओं से बेगारी कराके अपना काम निकालती है। उनके आगे इसकी ज़ोर-ज़बर्दस्ती तो चलती नहीं, इसलिये उन्हें धोखा देकर ही उनसे यह बेगार कराती है।

नर और मादा पहिले यह निश्चय करते हैं कि किस कौए की आँखों में धूल झोंकना होगा। निश्चय होते ही नर उसी पेड़ पर जा बैठता है और अपना राग अलापने लगता है। कौए कोयल से यों ही जलते हैं। देखते ही उस पर टूट पड़ते हैं और उसका पीछा करने लगते हैं। क्रोध के मारे थोड़ी देर के लिये अपनी सारी होशियारी खो बैठते हैं और घोंसले को सूना छोड़कर नर, मादा दोनों उस कोयल के पीछे निकल पड़ते हैं।

गौरैया

—+⊙+—

जिस कमरे में बैठे हम यह लेख लिख रहे हैं, उसमें किसी ईश्वर-भक्त की तस्वीर टँगी है और उसके पीछे गौरैये का घोंसला है। छोटी-सी चिड़िया है; पर साहस की बलिहारी है कि मनुष्य के घर में ही आसन जमा देती है और कोई लाख बुरा माने, हटने का तो नाम नहीं लेती। अँगरेज़ों के कभी-कभी नाकों दम कर देती है। एक ने लिखा है कि अगर घनिष्ठता इसी को कहते हैं कि पंखे की डोरी पर दिन-भर बैठी चिट-चिट करती रहे, किसी को कोई काम करने न दे, आपस में लड़ते-लड़ते मेज़ पर आगिरे, दावात उलट दे, और सजे-सजाये कमरे को घासफूस या चिथड़ों से भर दे, तो मैं यही कहूँगा कि गौरैये की घनिष्ठता से परमात्मा हम सबकी रक्षा करे! वह यह इस बात की ज़रा भी परवा नहीं करती कि हमने

अण्डे से भिन्न होता है, फिर भी प्रकृति की लीला देखिये कि कौए की आँखों पर पर्दा-सा पड़ जाता है। अण्डे से कोयल का बचा निकलने पर भी उनका मोह या अज्ञान बना ही रहता है। चुग चुगकर दाना लाते और उसे खिलाते हैं।

विलायती कोयल के विषय में पढ़ा है कि वह एक ऋतु में प्रायः पचीस अण्डे देती है और सब को बारी-बारी से कौओं के घर पहुँचा आती है। उसका नियम प्रत्येक घोंसले में एक ही अण्डा रखने का है, पर कभी-कभी दो कोयलों की कृपा एक ही घर पर होती है। कोयल इस काम के लिये ऐसे घोंसले को चुनती है, जिसमें हाल में ही अण्डे दिये गये हों। कोयल और कौए के बच्चे प्रायः एक ही समय में जन्म ग्रहण करते हैं। कोयल का बचा बड़ा दुष्ट होता है। कौओं के अण्डे हों या बच्चे उन्हें पीठ से ठेल-ठालकर नीचे गिरा देता है, जिससे वे प्रायः नष्ट हो जाते हैं। जन्म लेने के अधिक नहीं दो-ही-एक दिन बाद आपकी ऐसी करतूत होती है। हिस्सेदारों का काम तमाम करके आप दिन-दिन मोटे-ताज़े होने लगते हैं और थोड़े ही समय में माँ-बाप से भी बड़े हो जाते हैं। दुष्टता के साथ इसमें धूर्तता भी पाई जाती है। जब बचा पहले-पहले घोंसले से बाहर निकलता है, तब अपनी बोली न बोलकर कौओं की बोली बोलने की चेष्टा करता है। उधर संतति-स्नेह कौओं को ऐसा अन्धा कर देता है कि वे इसे अब भी पहचान नहीं पाते। साथ लिये फिरते हैं, और खिलाते-पिलाते हैं। एक दिन यह आप-ही-आप उन्हें सलाम कर अपनी राह लेता है।

भी खाती है। किसानों की कमाई चटकर जाने में यह कहीं-कहीं चूहे के भी कान काटती है।

अपने देश में इसकी जो उपजाति मिलती है, उसके नर के सिर का ऊपरी हिस्सा भूरा, और गाल सफ़ेद-से होते हैं। ठोड़ी से छाती के बीच तक एक काली धारी रहती है। परों में कुछ सफ़ेद, कुछ बादामी और कुछ भूरे होते हैं। मादा का रंग भूरा या मटमैला होता है। दोनों की चोंच मोटी होती है—दाना चुगनेवाली चिड़ियों की तरह।

गौरैया साल में कई बार अंडे देती है, पर इसका घोंसला विशेषकर फ़रवरी से मई तक देखा जा सकता है। घोंसला बड़ा बेढंगा होता है। मकान में तो डेरा डालती ही है, पर किसी पेड़ पर या झाड़ी में भी आप इसका घोंसला पा सकते हैं। घोंसले के लिये कुछ नरम या मुलायम चीज़ें चाहिएँ—घास-फूस और कागज़ से लेकर रुई तक। यह बड़ी लापर्वाही से घोंसला बनाता है। मादा एक बार पांच-छः अण्डे देती है। वे देखने में सुन्दर होते हैं और उनका रंग कभी हरा, कभी पीला और कभी भूरा रहता है। ऊपर कुछ काली-काली चित्तियाँ होती हैं। माँ-बाप शुरू में बड़े बड़े गुबरैले लाकर बच्चों को खाने के लिये देते हैं। गौरैये के शत्रुओं में एक प्रकार की बड़ी मक्खी है, जो इसीके घोंसले में अण्डे देती है। उसके बच्चे गौरैये के बच्चों के शरीर से चिमट जाते हैं, और कभी-कभी खून चूसते-चूसते उन्हें मार डालते हैं। बाज़ पक्षी और एक प्रकार का बड़ा चमगादड़ भी इसके शत्रुओं में हैं।

में पंचम स्वर शायद इसी की बोली से लिया गया है । कोकिल की कलित काकली पर कवि-कुल कितना विमुग्ध है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं ।

जिस समय दूसरे पक्षी घोंसला बनाने की उधेड़-बुन में लगे रहते हैं या जिस समय अण्डा सेने में उनके प्रेम और धैर्य्य की परीक्षा होती रहती है, उस समय कोयल बस गाने में मस्त रहती है। कविता करने और गाने-बजानेवालों की प्रकृति ही कुछ और हुआ करती है। लेख और रचना में जो अच्छी-से-अच्छी बन्दिश बाँधता है, वह मामूली छप्पर भी नहीं बाँध सकता। जो दीपक-राग का अभ्यास करता है, उसे यह फ़िक्र नहीं रहती कि घर में दीया किस तरह जलेगा। कोयल का भी यही हाल है। यहाँ गाने से फ़ुरसत किसे कि घास इकट्ठा कर घोंसला बनावे और उसमें अण्डे देकर उनपर चुपचाप बैठा रहे। पर साथ ही कोयल चालाक भी परले सिरे की होती है, इसलिये अपना काम बिगड़ने नहीं देती । हमारे कितने ही कवि और गवैये भूखों मर जाते हैं, पर कोयल तो अपना बाल भी बाँका नहीं होने देती। अपना नहीं तो दूसरे का घर मौजूद है! अपने पास इतना समय नहीं कि अण्डों पर बैठें और बच्चों का लालन-पालन करें, पर जब बेगार काफ़ी तादाद में मिल जाती है, तब फिर कोयल क्यों घर के जंजाल में पड़े और अपना अमूल्य समय नष्ट करे?

यह प्रश्न किया जा सकता है कि कोयल अपना अण्डा कौए के घोंसले में पहुँचकर देती है या उसे और कहीं देकर वहाँ पहुँचा आती है? इस सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा

लपेट देता है, फिर उसी 'नींव' पर मकान उठाता है। अंडों की संख्या प्रायः तीन होती है; कभी-कभी दो या चार भी। रंग सफ़ेद होता है, पर उनपर काली चित्तियाँ या बुँदकियाँ रहती हैं। ज़रदक प्रायः सारे भारत में पाया जाता है।

पीलक को पीला और तोते को हरा देखकर कभी-कभी यह जानने की इच्छा होती है कि पशु-पक्षियों में रंग-रूप की ऐसी विचित्रता का रहस्य क्या है। वास्तव में, ऐसे प्रश्न का उत्तर देना विज्ञान के लिये अभी असम्भव है, पर अनुसन्धान हो रहा है—वैज्ञानिक सत्य की ओर बढ़ते जा रहे हैं—सम्भव है, जो भेद हम आज नहीं जानते, उसे कल जान जायँ। फिर भी दो-एक बातों का उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा।

प्राणिमात्र को अपनी परिस्थिति के अनुकूल चलना पड़ता है। इस विषय में जो विशेष सफलता प्राप्त करता है, वह संसार में क़ायम रहता है, और तरक़्क़ी करता है, और जो पिछड़ता जाता है, वह एक दिन मर मिटता है। न जाने, पशु-पक्षियों की कितनी ही जातियाँ इस कारण नष्ट हो गईं कि वे अपने देश-काल की परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सकीं। समय-समय पर पृथ्वी के गर्भ में ऐसे अस्थि-पंजर मिलते हैं, जिन्हें देखकर आदमी हैरान हो जाता है कि आख़िर जिन प्राणियों की यह हड्डियाँ हैं, वे कहाँ गये! बात यह है, कि उनमें उन गुणों का अभाव था, जिनकी सहायता से वे जीवन-संग्राम में जीत पा सकते। नतीजा यह हुआ कि वे एक दिन मर मिटे।

तोतों को आपने कभी किसी वृक्ष की डाल पर बैठे देखा है?

भुजंगा

—+++—

भँवर पतंग जरे औ नागा ;
कोकिल भुजैल औ सब कागा ।

—जायसी

भुजंगा काले रंग का पक्षी है। पूँछ लम्बी और दो सिरों की होती है—मानों बीच से चीर दी गई हो। नर और मादा दोनों एक से ही काले-कलूटे होते हैं। पूँछ के परों की संख्या दस होती है।

आकार में इसे बुल्बुल के समान समझना चाहिए। भुजंगा को ही भुजैल कहते हैं।

घुग्घुरा, भुनगा, टिड्डा, खटकीड़ा—ऐसे ही जीवों से यह पेट की जलन मिटाता है। खेत में पैदा होनेवाली किसी चीज़ की ओर ध्यान

धोबिन इस देश में साल-भर नहीं पाई जाती। जाड़ा यहाँ बिताकर, अंडे देने के लिये, हिमालय की ओर चली जाती है। देखने में गौरैये के आकार की सुन्दर चिड़िया है। इसकी लंबाई प्रायः आठ इंचतक होती है। इस देश में इसकी दो उपजातियाँ मिलती हैं। एक का रंग ऊपर कुछ नीला, हरा और भूरा होता है, और नीचे पीला। पूँछ का बिचला हिस्सा काला और दोनों छोर सफ़ेद होते हैं। गला भी सफ़ेद होता है। वसन्त काल में नर का गला बीच में बिल्कुल काला हो जाता है। भवें सफ़ेद होती हैं। दूसरी उपजाति का रंग नीचे सफ़ेद होता है। इसके सिर, डैने और पूँछ भी बहुत कुछ सफ़ेद होती हैं। गला कुछ काला होता है, बाक़ी पर भूरे। धोबिन की एक विशेषता यह है कि इसकी पूँछ कुछ लंबी होती है और जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, यह उसे बार-बार हिलाती-डुलाती रहती है।

इसकी दूसरी विशेषता यह है कि यह साल में कई बार रंग बदलती है। इसका रहस्य क्या है? हमलोग बराबर एक ही वस्त्र पहने नहीं रहते। कभी कुछ पहन कर निकलते हैं, तो कभी कुछ। ऐसे लोग भी हैं, जो दिन भर में कई बार "सूट" बदलते हैं। पक्षियों का भी क़रीब-क़रीब यही हाल है। किन्तु ये कपड़े का व्यवहार नहीं करते; इसलिये अपने पंख बदला करते हैं। साल में कम-से-कम एकबार तो प्रत्येक पक्षी इस प्रकार पुराने परों को त्यागकर नये धारण करता है। पर कोई-कोई पक्षी साल में यह क्रिया दो चार करते हैं। शीतकाल के आरंभ में सभी पक्षी अपना काया-कल्प करते हैं। प्रायः सात-आठ

सहज स्वभाव है। लुटेरा ऐसा, कि मैना-जैसे पक्षी का आहार भी छीन लेता है। हुदहुद तो डर के मारे चीं-चपड़ भी नहीं करता और और अपना शिकार चुपचाप इसके हवाले कर देता है। सुनते हैं, कि मैना को डराने के लिए कभी-कभी यह शिकरे की सी बोली बोलता है, जिससे वह डरकर अपना शिकार छोड़ दे और भाग जाय।

भुजंगा बड़ा वीर पक्षी है; सभी से लड़ने को तैयार रहता है। घोंसला बनाने के दिनों में इसका मिज़ाज इतना गर्म रहता है, कि अपने वृक्ष पर या उसके आस-पास कौए या चील को देख ले, तो उसे ठुकराये बिना न रहे। बन्दर भी आ जायँ तो कुछ सीखकर जायँ। इसकी इसी वीरता से लाभ उठाने के लिए फ़ाख़्ता और पीलक प्रायः इसी की छत्र-च्छाया में आकर बसते हैं। इन ग़रीबों पर इसकी बराबर दयादृष्टि रहती है, और, चिड़ियों में इसका आतङ्क ऐसा है कि कोई भी डाकू या लुटेरा उनके घोंसलों पर पैर रखने की हिम्मत नहीं करता। कहीं-कहीं इसे, औरों का रक्षक होने के कारण, कोतवाल कहते हैं। कौए या बन्दर चाहे जो करें, पर आपसे हमारी प्रार्थना है कि भुजंगे का घोंसला या उसके अंडे देखने की चेष्टा न करें। एक महाशय ने ऐसी चेष्टा की थी। नतीजा यह हुआ कि उसकी चोंच की ठोकर से उनका सिर फूटते-फूटते बचा! आख़िर कोतवाल साहब ठहरे!!

भुजंगा अपना घोंसला अप्रैल के लगभग बनाता है। इसके लिए वह किसी ऊँचे वृक्ष को चुनता है। घास-फूस, मकड़ी का जाला

पर कुछ स्याह और कुछ सफ़ेद। जहाँ नर का रंग काला या स्य
रहता है, वहाँ मादा का रंग धूसर या भूरा। इनकी पूँछ प्रायः ऊ
की ओर उठी रहती है। मादा का गला उतना मीठा नहीं हो
जितना नर का। वह उतनी तेज़ भी नहीं होती। दोयल बड़ा चं
पक्षी है। लड़ने में भी बहादुर है। जिस बाग़ में ख़ुद रहता है, उ
दूसरे पक्षी को रहने देना नहीं चाहता। सुनते हैं, नेपाल में अ
लोग इन्हें लड़ाने के लिये पालते हैं।

दोयल का आहार कीड़ा-मकोड़ा है। प्रायः यह आम के बग़ीचे
मिलता है। आबादी से दूर रहता है, पर कभी-कभी वहाँ भी प
जाता है। मनुष्य से डरता नहीं। बल्कि कभी-कभी तो किसी म
में ही घोंसला बनाकर डट जाता है।

इसका समय अप्रैल से जूनतक है। घोंसला किसी वृक्ष
दीवार के सूराख में घास-फूस और कभी-कभी वृक्षों के पत्तों
जुटाकर बनाता है। कभी-कभी इसका घोंसला कुढंगा होता है।
और सुर ठीक करने में शायद इसका इतना समय लग जाता है
घोंसले की ओर विशेष ध्यान नहीं दे पाता। अंडों की संख्या
चार होती है। देखने में सुन्दर होते हैं और रंग नीला-हरा होता
ऊपर लाल-लाल बुँदकियाँ रहती हैं।

खंजन से इसकी आकृति मिलती-जुलती है। पर दोयल अ
पूँछ को प्रायः खड़ा रखता है, और खंजन की तरह इसके सफ़ेद
नहीं होती। हाँ, चंचलता में तो उसीके समान है।

भीमराज

भीमराज को भुजंगे का बड़ा भाई समझिए। आकार में यह उसकी अपेक्षा प्रायः दूना होता है। इसकी चोंच काफ़ी मज़बूत होती है और इसके सिर पर कलगी या चोटी के रूप में कुछ खास पर होते हैं। पूँछ के किनारों के पर डेढ़ फ़ीट से भी ज़्यादा लम्बे होते हैं। बाक़ी हिस्से की लम्बाई साधारण-सी होती है—सात इंच से भी कम। यह भारतवर्ष के अधिकांश भाग में पाया जाता है। इसकी बोली बड़ी सुहावनी होती है, इसलिये लोग इसे पालते भी हैं। कुछ विशेषज्ञों की सम्मति है कि गाने में और कोई पक्षी भीमराज की बराबरी नहीं कर सकता। दूसरे पक्षियों और पशुओं की बोली की नक़ल भी यह बड़ी ख़ूबी से कर सकता है। यही कारण है कि यह इतना लोकप्रिय है। पर अगर इसे पालतू बनाकर रखना है तो दो चीज़ों का प्रबन्ध ज़रूर होना चाहिए—इसके रहने के लिये बड़े पिंजरे का और इसके खाने के लिये सजीव कीड़ों का।



सकती है, कि बिना देखे शायद ही कोई जान सके, कि पक्षी बोल रहा है। पहाड़ी मैना में यह गुण विशेष रूप से पाया जाता है और इसीलिये उसे प्रायः अपनी स्वतंत्रता से हाथ धोकर पिंजर-बद्ध होना पड़ता है।

मैना की कई उपजातियाँ हैं। उत्तर भारत में विशेषतः देशी मैना, दरिया मैना, गुलाबी मैना, तेलिया मैना, अबलख मैना और पहाड़ी मैना मिलती हैं।

देशी मैना

देशी या साधारण मैना देश-भर में पाई जाती है। पहाड़ों पर भी यह जा पहुँची है, और दार्जिलिङ्ग-जैसे स्थान में अब इसके दर्शन होने लगे हैं। पर इस देश की बात जाने दीजिये, अब तो यह विदेशों में भी मिलती है। मारीशस, न्यूज़ीलैन्ड, आस्ट्रेलिया में यहाँ की देशी मैना का वंश-विस्तार हो रहा है। कहीं-कहीं से तो यह रिपोर्ट आई है कि यह बड़ा अनर्थ कर रही है। वहाँ के कुछ खास पक्षी हैं, जिनके अंडों और बच्चों के लिये यह खतरनाक साबित होरही है। प्रशान्त महासागर के एक द्वीप में यहाँ से देशी मैना लेजाकर बसाई गई थी। उसने थोड़े ही समय में वहाँ के कबूतरों को निकाल बाहर कर दिया। बाहर जाने से शायद यह कुछ ज्यादा ढीठ और शरारती बन जाती है। हानिकारक कीड़ों को नष्ट करने के लिये यह बसाई जाती है, पर पीछे स्वयं उत्पात मचाने लगती है।

इसका सिर काला और बाक़ी शरीर बादामी होता है। चोंच

इसकी बोली बड़ी तेज़ होती है और यह देरतक लगातार बोलता रहता है। कभी-कभी तो यह 'हुट हुट' की ध्वनि निकालता है और कभी कभी 'कोक-कोक' की।

महोखा कीड़े-मकोड़े खाता है। कभी-कभी छिपकली या छोटे साँप इत्यादि भी। यह दौड़ने में तेज़ होता है, और प्रायः ज़मीन पर ही शिकार करता है। सर्द ज़मीन इसे ज़्यादा पसन्द है। पेड़ पर आप इसे गिलहरी की तरह उछलते-कूदते और शिकार पकड़ते पायेंगे। यह उड़ने में कमज़ोर होता है और प्रायः अकेला ही रहता है। कीड़ों या छोटे-छोटे जीव-जन्तुओं को यह पैर से दबाकर चीर डालता है।

गर्मी बीतने पर यह घोंसला बनाता है। उस समय नर और मादा दोनों बड़ा शोर मचाते हैं। यह भी देखने में आता है कि नर अपनी पूँछ और डैनों को फैलाकर मादा के सामने नाचता है। घोंसला बड़ा-सा होता है, और वह किसी ऊँचे वृक्ष पर या बाँसवाड़ी में तैयार किया जाता है। नीम, जामुन, ढाक इत्यादि की टहनियों और पत्तों से ही प्रायः यह अपना घोंसला बनाता है। घोंसले के ऊपर कभी-कभी छतरी रहती है, जिससे देखने में वह बड़े गेंद-सा मालूम होता है। जून से अगस्त तक इसके अण्डे देनेका समय है। अण्डा प्रायः डेढ़ इंच लंबा होता है। अगस्त-सितम्बर में आप महोखा के बच्चों को देख सकते हैं। जबतक वह सयाने नहीं हो जाते, घोंसला नहीं छोड़ते। जब उनके डैनों में कुछ सफ़ेद पर होजाते हैं, तब वह घोंसला छोड़ देते हैं।

गुलाबी मैना

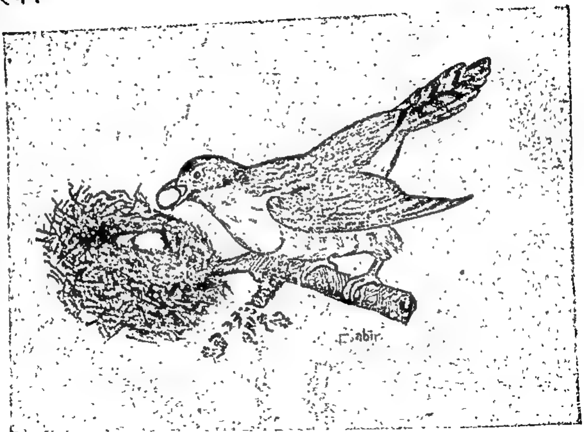
गुलाबी मैना बड़ी ही खूबसूरत चिड़िया है। इसके सिर, छाती और डैने बिल्कुल काले होते हैं; पर बाक़ी हिस्सा प्रायः गुलाबी। ज्यों-ज्यों समय बीतता है, गुलाबी रंग चढ़ता जाता है। यह झुण्ड में चलती है, पर साल-भर इस देश में नहीं रहती। जाड़े में यह और किसी देश में चली जाती है। इस देश में यह अण्डे नहीं देती। इसलिये इसको घोंसला बनाने की ऐसी कोई ज़रूरत नहीं पड़ती। यह फ़सल को बहुत नुक़सान पहुँचाती है। पर टिड्डी और टिड्डा जैसे कीड़े भी इसके खाद्य हैं।

तेलिया मैना

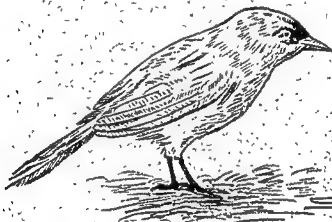
तेलिया मैना को तिलोरी भी कहते हैं। "पेडु तिलोरी औ जल हंसा"—इस पंक्ति में इस पक्षी का उल्लेख है। इसे तेलिया इसलिये कहते हैं कि इसका रंग काला और चमकीला होता है। पास जाने से कुछ बादामी चित्तियाँ भी नज़र आवेंगी। गुलाबी की तरह यह भी झुण्ड में चलती है और साल में कुछ ही महीने इस देश में बिताती है। आप इसे जब यहाँ देखेंगे, जाड़े में। यहाँ इसके घोंसले नहीं होते। यहाँ से कई हज़ार मील जाकर यह अण्डे देती है। इसका आहार मुख्यतः कीड़े हैं। गुलाबी की अपेक्षा तेलिया मैना ही इस देश में अधिक काल बिताती है।

अबलखा मैना

अबलख मैना का नाम अबलखा है—इसका शरीर काला, गाल



पपीहा



सतभइया

भूरापन लिए हुए बादामी। कुछ पर सफ़ेद भी होते हैं। लम्बाई ए
फुट से ज्यादा नहीं होती। चोंच और पैर कोयल की अपेक्षा छोटे ह
नर और मादा दोनों देखने में एक से ही लगते हैं। इसकी ए
उपजाति के ऊपर के सभी पर काले, और नीचे के सफ़ेद होते ह
पूँछ के अन्त में भी कुछ पर सफ़ेद पाये जाते हैं।

पश्चिम में बीकानेर और पूर्व में ढाका—बस इन्हीं के बीच पप
मिलता है। न तो वह सिन्ध या पंजाब में पाया जाता है, औ
न आसाम में। सुनते हैं, कि बम्बई की तरफ़ भी पपीहा नहीं होत
संयुक्त प्रान्त और बिहार में यह साधारण पक्षी है। मद्रास प्रान्त
मिलता है, पर बहुत कम। काला पपीहा उत्तर भारत में सिर्फ़ बरस
के दिनों में पाया जाता है। उसके बाद दक्षिण की ओर चल देता
एक बात ज़रूर है। जिन प्रान्तों में पपीहा साधारण पक्षी है व
भी वह अदृश्य-सा रहता है। पत्तों की आड़ में रहना इतना पस
करता है कि हम उसे बहुत कम देख पाते हैं।

मगर पर्दे में रहकर भी वह अपनी बोली से संसार को अ
अस्तित्व की सूचना देता रहता है। दिन रात पी-पी रटता रह
है। इसकी बोली ने इसे हमारे देश के साहित्य में अमर कर दिया ह
इसका स्वर क्रमशः तीव्र होता जाता है, और अन्त में सप्तम स
पहुँच जाता है। बोलते समय रात को पपीहों की शृंखला-सी बंध जा
है। एक की आवाज़ दूसरे के कान में पड़ते ही वह भी पी-पी क
लगता है। इस प्रकार दूर-दूर के पपीहे थोड़ी ही देर में "कन्स

पारस्परिक प्रीति युद्धकाल में ही नहीं, शान्ति के समय में भी देखने में आती है। अक्सर आपने देखा होगा, कि एक सतभइया चोंच से प्रेमपूर्वक दूसरे का सिर खुजा रहा है या उसके परों को साफ़ कर रहा है। पर आखिर ये पक्षी ठहरे, इनसे महात्माओं के से आचरणकी आशा करना व्यर्थ है। स्नेह है, सहानुभूति है, पर पिंजरे में खाने-पीने की कोई चीज़ डाल दीजिये, फिर देखिये इनकी आपस में किस तरह दो-दो चोंचे होने लगती हैं। तमाशा देखना हो तो इनके बीच एक तेलचट्टा डालकर देख लीजिये। पल-भर में शान्ति अशान्ति में बदल जायगी और इनकी आपस में छीन-झपट होने लगेगी।

सतभइया उड़ने में बहुत कमज़ोर होता है। अनुमान है, कि एक उड़ान में शायद आधी मील भी नहीं जा सकता। साधारणतया हम इसे तीस-चालीस गज़ तक जाते देखते हैं। पर इसके पैरों में अच्छी ताक़त होती है, इसलिये फुदकने में बहादुर है। इनकी एकता का एक कारण यह भी हो सकता है कि अपनी रक्षा के लिये उड़कर दूर निकल जाना इनके लिये असंभव है। कभी-कभी आप देखेंगे कि किसी ऊँचे वृक्ष पर जा बैठता है, फिर उड़के दूसरे छोटे वृक्ष पर आजाता है। इस तरह आगे बढ़ता आता है। डाली पर भी सतभइये फुदकते रहते हैं।

इनका आहार कीड़े-मकोड़े, छोटी-छोटी छिपकलियाँ और मेढक हैं। पूसा में एकबार जाँच की गई तो मालूम हुआ कि कीड़ों के अलावा वहाँवाले गूलर, बेर इत्यादि भी खाते हैं। बच्चों को प्राय झींगुर और गुबरैले लाकर खिलाते हैं। इन्हें झाड़ी-झुरमुट से प्रेम होता है।

भूरापन लिए हुए बादामी। कुछ पर सफ़ेद भी होते हैं। लम्बाई
फुट से ज़्यादा नहीं होती। चोंच और पैर कोयल की अपेक्षा छोटे
नर और मादा दोनों देखने में एक से ही लगते हैं। इसकी
उपजाति के ऊपर के सभी पर काले, और नीचे के सफ़ेद होते
पूँछ के अन्त में भी कुछ पर सफ़ेद पाये जाते हैं।

पश्चिम में बीकानेर और पूर्व में ढाका—बस इन्हीं के बीच पर्प
मिलता है। न तो वह सिन्ध या पंजाब में पाया जाता है, अ
न आसाम में। सुनते हैं, कि बम्बई की तरफ़ भी पपीहा नहीं होत
संयुक्त प्रान्त और बिहार में यह साधारण पक्षी है। मद्रास प्रान्त
मिलता है, पर बहुत कम। काला पपीहा उत्तर भारत में सिर्फ़ बरस
के दिनों में पाया जाता है। उसके बाद दक्षिण की ओर चल देता
एक बात ज़रूर है। जिन प्रान्तों में पपीहा साधारण पक्षी है
भी वह अदृश्य-सा रहता है। पत्तों की आड़ में रहना इतना पस
करता है कि हम उसे बहुत कम देख पाते हैं।

मगर पर्दे में रहकर भी वह अपनी बोली से संसार को अ
अस्तित्व की सूचना देता रहता है। दिन रात पी-पी रटता रा
है। इसकी बोली ने इसे हमारे देश के साहित्य में अमर कर दिया
इसका स्वर क्रमशः तीव्र होता जाता है, और अन्त में सप्तम
पहुँच जाता है। बोलते समय रात को पपीहों की शृंखला-सी बंध ज
है। एक की आवाज़ दूसरे के कान में पड़ते ही वह भी पी-पी क
लगता है। इस प्रकार दूर-दूर के पपीहे थोड़ी ही देर में "कन्स

गौरैया

जिस कमरे में बैठे हम यह लेख लिख रहे हैं, उसमें किसी ईश्वर-भक्त की तस्वीर टँगी है और उसके पीछे गौरैये का घोंसला है। छोटी-सी चिड़िया है; पर साहस की बलिहारी है कि मनुष्य के घर में ही आसन जमा देती है और कोई लाख बुरा माने, हटने का तो नाम नहीं लेती। अँगरेज़ों के कभी-कभी नाकों दम कर देती है। एक ने लिखा है कि अगर घनिष्टता इसी को कहते हैं कि पंखे की डोरी पर दिन-भर बैठी चिट-चिट करती रहे, किसी को कोई काम करने न दे, आपस में लड़ते-लड़ते मेज़ पर आगिरे, दावात उलट दे, और सजे-सजाये कमरे को घासफूस या चिथड़ों से भर दे, तो मैं यही कहूँगा कि गौरैये की घनिष्टता से परमात्मा हम सबकी रक्षा करे! वह यह इस बात की ज़रा भी परवा नहीं करती कि हमने

बहेलिया रोज़ हुदहुद जाल में फंसा लाता और उनकी कलगियाँ उतारकर उसी सोनार के हाथ बेच देता। एक दिन किसी जौहरी ने कलगी देखी तो बोल उठा कि कौन कहता है कि यह पीतल है, यह तो खालिस सोना है। और उसने सोने के भाव वह कलगी खरीद भी ली। फिर क्या था, बात-की-बात में सब जगह यह खबर फैल गई कि हुदहुद के माथे पर जो कलगी होती है वह सोने की है, और तमाम लोग हुदहुद की जान के गाहक बन गये। जब इनकी संख्या तेज़ी से घटने लगी तब सरदार और सरदारनी को वैसा वर माँगने का पछतावा होने लगा। पर सुलेमान के अन्तिम शब्दों को स्मरण कर, सरदार ने ढाढ़स बाँधा और निश्चय किया कि उन्हींकी शरण में चलना चाहिए। बड़ी मुश्किल से अपनी जान बचाता हुआ वह फिर उनके दरबार में हाज़िर हुआ और रो-रो कर अपनी बीती कह सुनाई। सुलेमान बोले:—"बेवक़ूफ़, तुमने मेरी चेतावनी पर कुछ भी ध्यान न दिया, यह उसीका फल है। लोभ ने तुम्हारी विवेक-बुद्धि हर ली और मद ने तुम्हें अन्धा बना दिया। खैर, तुम्हारे पाप का प्रायश्चित्त हो चुका; अब मैं अपना वर लौटा लेता हूँ। तुम्हारी सेवा के पुरस्कार का स्मारक रहना ज़रूरी है, इसलिये तुम्हारी कलगी तो बनी रहेगी। पर वह सोने की न होकर साधारण परों की होगी।" तभी से हुदहुद ऐसी कलगीवाले होने लगे और उनकी संख्या घटने के बजाय दिन-दिन बढ़ने लगी।

नानी की कहानी को यहीं छोड़कर हम अब वैज्ञानिक दृष्टि से हुदहुद के विषय में कुछ लिखना चाहते हैं।

तक चुगने जाते हैं और फिर आप ही अपनी जगह लौट आते हैं। हमारे घर-आँगन में निर्भय और निःशंक होकर घूमते-फिरते हैं, मनमानी चीज़ें चुग-चुगकर खाते हैं। अक्सर हमारे मकान की छतों या कारनिसों में ही सारी उम्र बिता देते हैं—क्या दूसरा भी कोई पक्षी है जो इस विषय में कबूतर की बराबरी कर सके? वृक्षों की शरण लेना कबूतरों को अच्छा नहीं लगता—पालतू कबूतरों के लिए लोग लकड़ी का एक घर तैयार कराते हैं, जिसे 'दरबा' कहते हैं। पर जिन्हें ऐसा घर नहीं मिलता वे मकान की छत या चट्टान की खुली हवा में ही रात गुज़ार देते हैं। बड़े गोष्ठीप्रिय होते हैं। सैकड़ों कबूतरों का एक साथ रहना, उड़ना या विश्राम करना साधारण-सी बात है। कबूतर और फ़ाख़ता एक ही जाति के पक्षी हैं, पर कबूतर का आकार कुछ बड़ा होता है। साधारणतः इसका रंग कुछ नीलापन लिये हुए भूरा होता है। डैनों पर दो काली धारियाँ होती हैं। सूर्य का प्रकाश पड़ने पर इसकी गरदन की चमक देखते ही बनती है। पैर प्रायः लाल होते हैं, कुछ कबूतरों के बैंगनी या पीले भी। आँखों का रंग नारंगी होता है। इसके पैर की बनावट कुछ विचित्र-सी होती है—तीन उँगलियाँ आगे की ओर और एक पीछे की ओर होती हैं। सिर छोटा होता है, और शरीर भारी। डैने मज़बूत होते हैं। इसकी चोंच कुछ नरम और नाक के ऊपर-ऊपर कुछ फूली हुई-सी होती है। नर और मादा देखने में एक-से ही जान पड़ते हैं।

कबूतर की अनेक उपजातियाँ हैं। इनमें कुछ मशहूर कबूतरों के नाम हैं—गिरहबाज़, गोला, लोटन, लक्का, शीराज़ी, बग़दादी।

भी खाती है। किसानों की कमाई चटकर जाने में यह कहीं-कहीं के भी कान काटती है।

अपने देश में इसकी जो उपजाति मिलती है, उसके नर के सि ऊपरी हिस्सा भूरा, और गाल सफ़ेद-से होते हैं। ठोड़ी से छाती बीच तक एक काली धारी रहती है। परों में कुछ सफ़ेद, कुछ धा और कुछ भूरे होते हैं। मादा का रंग भूरा या मटमैला होता है। की चोंच मोटी होती है—दाना चुगनेवाली चिड़ियों की तरह।

गौरैया साल में कई बार अंडे देती है, पर इसका घोंसला विशे फ़रवरी से मई तक देखा जा सकता है। घोंसला बड़ा बेढंगा है। मकान में तो डेरा डालती ही है, पर किसी पेड़ पर या म में भी आप इसका घोंसला पा सकते हैं। घोंसले के लिये कुछ या मुलायम चीज़ें चाहिएँ—घास-फूस और कागज़ से लेकर रुई त यह बड़ी लापर्वाही से घोंसला बनाता है। मादा एक बार पांच-छः अ देती है। वे देखने में सुन्दर होते हैं और उनका रंग कभी हरा, क पीला और कभी भूरा रहता है। ऊपर कुछ काली-काली चित्ति होती हैं। माँ-बाप शुरू में बड़े-बड़े गुबरैले लाकर बचों को खाने लिये देते हैं। गौरेये के शत्रुओं में एक प्रकार की बड़ी मक्खी है, इसीके घोंसले में अण्डे देती है। उसके बच्चे गौरैये के बचों के श से चिमट जाते हैं, और कभी-कभी खून चूसते-चूसते उन्हें डालते हैं। बाज़ पक्षी और एक प्रकार का बड़ा चमगादड़ भी इ शत्रुओं में हैं।

हारिल

—++++—

हमारे हरि हारिल की लकरी ।

—सूर

गही टेक छूटै नहीं, कोटिन करौ उपाय ।
हारिल धर पग ना धरै, उड़त-फिरत मरि जाय ।।

—अज्ञात कवि

हारिल कबूतर की जाति का पक्षी है, पर पेड़ से नीचे उतरना या मनुष्य से किसी तरह का रिश्ता जोड़ना नहीं चाहता । कुछ लोगों का ख़याल है कि यह बड़ा अभिमानी है, इसीसे ज़मीन पर पैर नहीं

पीलक

—++++—

पीलक का दूसरा नाम पील्ह है। जिसका सिर काला है
उसको कहीं ज़रदक और कहीं पहाड़ी टोपीदार पीलक
हैं। जाड़े में प्रायः काले सिरवाला और गर्मी में पीले सिर
पीलक देखने में आता है। सितम्बर में कितने ही पक्षी उत्तर भा
अन्यत्र चल देते हैं। पीले सिरवाला पीलक इसी श्रेणी में है।
प्रान्त में उसका स्थान ज़रदक ले लेता है, पर पंजाब में नहीं।

यह पक्षी आकार में मैना के समान होता है। इसके पर
और काले होते हैं। नर के डैने काले और चोंच गुलाबी है
और बाक़ी शरीर पीला। मादा उतनी पीली नहीं होती। ज़रद
नर और मादा दोनों के सिर, गले और पीठ के ऊपरी हिस्से

चितरोख को शायद चितरवा भी कहते हैं। इसका रंग ईंट का-सा लाल होता है और डैनों पर चित्तियाँ होती हैं। पूँछ कुछ बड़ी होती है। गरदन के पास कुछ स्याह और सफ़ेद धब्बे-से होते हैं—मानो शतरंज की बिसात का टुकड़ा हो। छोटी फ़ाखता की गरदन के पास यह बिसात तो होती है, पर उसके डैनों पर चित्तियाँ नहीं होतीं। उनका रंग भूरा होता है। दोनों की बोली में भी अन्तर होता है। छोटी की बोली ज़्यादा सुहावनी लगती है। फ़ाखता प्रायः कू-कू या तू-तू करती रहती है। इसीलिये एक कवि ने लिखा है कि—

भोर होत बोलहिं चुहचुही
बोलहिं पंडुक—एकै तूही।

इसकी बोली को टुटरूँ-टूँ कहते हैं। धौरी या सिरोती की गरदन के पास शतरंज की वह बिसात नहीं होती। धौरी देखने में बहुत सुन्दर होती है। इसकी गरदन पर काली धारी होती है जिसको इसकी कंठी कह सकते हैं। इसका रंग ज़रा-सा नीला होता है और डैनों पर चित्तियाँ नहीं होतीं। चितरोख, छोटी और धौरी के नर और मादा दोनों एक-से होते हैं, पर सिरोती की बात और है। उसके नर के डैने लाल होते हैं, बाक़ी पर भी कुछ लालिमा लिये रहते हैं। मादा का रंग बादामी होता है और उसके डैने लाल नहीं होते। पर काली कंठी, नर और मादा दोनों में ही पाई जाती है। धौरी की अपेक्षा सिरोती छोटी होती है। इसकी बोली भी और पंडुकों से बिलकुल भिन्न होती है।

लपेट देता है, फिर उसी 'नींव' पर मकान उठाता है। अंडों की संख्या प्रायः तीन होती है; कभी-कभी दो या चार भी। रंग सफ़ेद होता है, पर उनपर काली चित्तियाँ या बुँदकियाँ रहती हैं। ज़रदक प्रायः सारे भारत में पाया जाता है।

पीलक को पीला और तोते को हरा देखकर कभी-कभी यह जानने की इच्छा होती है कि पशु-पक्षियों में रंग-रूप की ऐसी विचित्रता का रहस्य क्या है। वास्तव में, ऐसे प्रश्न का उत्तर देना विज्ञान के लिये अभी असम्भव है, पर अनुसन्धान हो रहा है—वैज्ञानिक सत्य की ओर बढ़ते जा रहे हैं—सम्भव है, जो भेद हम आज नहीं जानते, उसे कल जान जायँ। फिर भी दो-एक बातों का उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा।

प्राणिमात्र को अपनी परिस्थिति के अनुकूल चलना पड़ता है। इस विषय में जो विशेष सफलता प्राप्त करता है, वह संसार में क़ायम रहता है, और तरक़्क़ी करता है, और जो पिछड़ता जाता है, वह एक दिन मर मिटता है। न जाने, पशु-पक्षियों की कितनी ही जातियाँ इस कारण नष्ट हो गईं कि वे अपने देश-काल की परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सकीं। समय-समय पर पृथ्वी के गर्भ में ऐसे अस्थि-पंजर मिलते हैं, जिन्हें देखकर आदमी हैरान हो जाता है कि आख़िर जिन प्राणियों की यह हड्डियाँ हैं, वे कहाँ गये! बात यह है, कि उनमें उन गुणों का अभाव था, जिनकी सहायता से वे जीवन-संग्राम में जीत पा सकते। नतीजा यह हुआ कि वे एक दिन मर मिटे।

तोतों को आपने कभी किसी वृक्ष की डाल पर बैठे देखा है?

के मनोरंजन या भगवद्भजन का अच्छा साधन है। "सुआ पढ़ावत गनिका तरि गई" तो प्रसिद्ध ही है। हरसाल हज़ारों पक्षी पिंजरों में क़ैद होते हैं। मनुष्यों की बोली के अलावा यह तरह-तरह के खेल भी सीख लेता है। किसी भी बड़े मेले में आप तोतों के खेल देख सकते हैं। कसरत करते हैं, फ़ौजी क़वायद दिखाते हैं, और छोटी-मोटी तोपें दागते हैं। गोली लगने से कोई-कोई मरकर गिर पड़ते हैं, पर थोड़ी ही देर बाद जी उठते हैं।

शौक़ीन लोग इसकी बोली सुनने के लिये इसे भले ही पालें, अपने रंग-रूप और चालाकी से यह हमारा मनोरंजन भले ही करे, भले ही किसीसे 'राम-राम' रटाकर उसके लिये स्वर्ग का द्वार खुलवा दे, किसानों का तो यह शत्रु है, और हर साल इससे फसल को अपरिमित हानि पहुँचती है। तोता शाकाहारी है, नाज और फल खाकर ही रहता है। पर इसकी ऐसी बुरी लत है कि यह नाज की बाल को ही तोड़ लेता है, और दो-एक दाने खाकर बाक़ी को फेंक देता है। फलों को भी बड़ा नुक़सान पहुँचाता है। फ़रवरी के महीने में सेमल के फूलों के पास तोतों का जमघट लग जाता है। पर हमारे कवियों का कहना है कि वहाँ इन्हें निराशा ही हाथ आती है— "सेमर सेइ सुआ पछिताने" यह कहावत आपने भी सुनी होगी। आसाम में इधर गन्ने की फ़सल पर भी तोते धावा बोलने लगे हैं। अंगरेज़ी में कहावत है कि "सुन्दर वही जो सुन्दर कार्य करे," पर इस हालत में हम, खेती की दृष्टि से तो, तोते को सुन्दर नहीं कह सकते, भले ही लोग हमें स्वार्थी कहें।

क्या है। वहाँ का पीलक तमाम एक ही रंग का नहीं है। किसी द्वीप में पीला है, तो किसी में बादामी। कहीं रंग में कुछ फीकापन है, तो कहीं चमक-दमक है। पता लगा कि प्रत्येक द्वीप में एक और पक्षी है, जिसे हम एक तरह का शकरखोरा कह सकते हैं और उसी के रंग के अनुसार पीलक भी अपना रंग बदलता गया है। वहाँ का यह शकरखोरा बड़ा ज़बर्दस्त पक्षी है। बाज़ भी उस पर झपटता है, तो सोच-समझकर। ऐसी हालत में पीलक का उसके रंग की नक़ल करना आश्चर्य की बात नहीं। दोनों के रंग में ही नहीं, आकृति में भी समानता पाई जाती है। तोता पत्तों में छिप जाता है; पीलक छिपता नहीं, पर दूसरे का जामा पहन लेता है।



का अभाव हो जाता है। अधिकांश तो मर जाते हैं और जो बाक़ी बचते हैं, वे सर्दी से जान बचाने के लिये ऐसे सूराखों या बिलों में छिप जाते हैं कि पक्षी उन्हें पा ही नहीं सकते। ऐसी हालत में इन्हें उन देशों की शरण लेनी पड़ती है, जहाँ खाने को काफ़ी मिल सकता है। जब वसन्त-काल आता है और ये समझ जाते हैं कि अब घर पर कीड़ों की कमी न होगी तब अपने-अपने देश को चल देते हैं।

ऐसी यात्राएँ प्रायः बड़ी लम्बी होती हैं। सैकड़ों कोस आना-जाना पड़ता है। ख़याल कीजिये कि जिन पक्षियों को आप शीत-काल में यहाँ देखते हैं वे ग्रीष्म-काल में तिब्बत, रूस या चीन की हवा खाते रहते हैं। इसी प्रकार कुछ पक्षी उत्तर यूरोप से दक्षिण अफ़्रीकातक का—प्रायः छः हज़ार मील का—धावा मारते हैं। ऐसे पक्षियों के लिये एक उड़ान में डेढ़ सौ कोस पूरा कर देना मामूली-सी बात है। घण्टे में प्रायः बीस कोस उड़ते हैं और सात-आठ घण्टे लगातार उड़ते चले जाते हैं। प्रशान्त महासागर के हवाई नामक द्वीप में एक पक्षी अलास्का से उड़कर प्रवास करने आता है; इसको लगातार दो हज़ार मील उड़ना पड़ता है, क्योंकि इसके रास्ते में कोई ऐसा स्थान नहीं पड़ता जहाँ यह विश्राम कर सके।

हिमालय के उस पार से यहाँ आनेवाले पक्षी प्रायः ब्रह्मपुत्र की धारा का अनुसरण करते हैं, और जहाँ ऊँची चोटियाँ बाधक होती हैं, वहाँ घाटियों के बीच होकर निकल जाते हैं। ऐसे पक्षी प्रायः रात को सफ़र करते हैं।

सितम्बर में जिन नये पक्षियों का भारतवर्ष हर साल स्वागत

धोबिन इस देश में साल-भर नहीं पाई जाती। जाड़ा यहाँ बिताकर, अंडे देने के लिये, हिमालय की ओर चली जाती है। देखने में गौरैये के आकार की सुन्दर चिड़िया है। इसकी लंबाई प्रायः आठ इंचतक होती है। इस देश में इसकी दो उपजातियाँ मिलती हैं। एक का रंग ऊपर कुछ नीला, हरा और भूरा होता है, और नीचे पीला। पूँछ का बिचला हिस्सा काला और दोनों छोर सफ़ेद होते हैं। गला भी सफ़ेद होता है। वसन्त काल में नर का गला बीच में बिल्कुल काला हो जाता है। भवें सफ़ेद होती हैं। दूसरी उपजाति का रंग नीचे सफ़ेद होता है। इसके सिर, डैने और पूँछ भी बहुत कुछ सफ़ेद होती हैं। गला कुछ काला होता है, बाक़ी पर भूरे। धोबिन की एक विशेषता यह है कि इसकी पूँछ कुछ लंबी होती है और जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, यह उसे बार-बार हिलाती-डुलाती रहती है।

इसकी दूसरी विशेषता यह है कि यह साल में कई बार रंग बदलती है। इसका रहस्य क्या है? हमलोग बराबर एक ही वस्त्र पहने नहीं रहते। कभी कुछ पहन कर निकलते हैं, तो कभी कुछ। ऐसे लोग भी हैं, जो दिन भर में कई बार "सूट" बदलते हैं। पक्षियों का भी करीब-करीब यही हाल है। किन्तु ये कपड़े का व्यवहार नहीं करते; इसलिये अपने पंख बदला करते हैं। साल में कम-से-कम एकबार तो प्रत्येक पक्षी इस प्रकार पुराने परों को त्यागकर नये धारण करता है। पर कोई-कोई पक्षी साल में यह क्रिया दो बार करते हैं। शीतकाल के आरंभ में सभी पक्षी अपना काया-कल्प करते हैं। प्रायः सात-आठ

बुलबुल

—++++—

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा ।
हम बुलबुलें हैं उसकी वह गुलिस्ताँ हमारा ॥

—इक़बाल

बहुत ठीक—मगर जिस बुलबुल की ओर यहाँ इशारा है और जिसके तरानों की इतनी तारीफ़ है वह फ़ारिस में पाई जाती है, इस देश में नहीं। मौलाना आज़ाद उस देश के वसन्त का वर्णन करते हुए लिखते हैं:—

"इधर गुलाब खिला, उधर बुलबुल हज़ारदास्तां उसकी शाख़ पर बैठी नज़र आई। बुलबुल न फ़क़त फूल की टहनी पर बल्कि घर-घर दरख़्तों पर बोलती है और चहचहे करती है। और गुलाब की टहनी

जो खंजन साधारणतः इधर पाया जाता है, उसके कुछ पर सफ़ेद और कुछ काले होते हैं। शरीर के नीचे का हिस्सा, भौं और पूँछ के ऊपर के पर तो सफ़ेद होते हैं, और बाक़ी पर काले। मादा नर की अपेक्षा छोटी होती है, और उसकी पीठ काली न होकर भूरी होती है।

यह चिड़िया अपना घोंसला पानी के पास चिड़ियों के पर और घास-फूस इत्यादि से बनाती है। इसका समय मार्च से मईतक है। अंडों की संख्या प्रायः चार होती है, और उनपर बादामी रंग की चित्तियां होती हैं।

खंजन निर्जन स्थान में अकेला रहना पसन्द करता है। कुछ लोगों का विश्वास है कि यह पाला नहीं जा सकता, और जब इसके सिर पर चोटी निकलती है, तब छिप जाता है, किसी को दिखाई नहीं देता।

कहीं-कहीं खंजन को खंडरिच या ममोला भी कहते हैं।

यह बड़ा ही चंचल पक्षी है, इसीलिये अक्सर हिन्दी कविता में नेत्रों की उपमा इससे दी जाती है। जैसे—

'खंजन-नैन रूप-रस-माते;
उड़ि-उड़ि जात निकट स्रवनन के,
उलटि-पलटि ताटंक फँदाते।'

—सूरदास

नहीं सकती। आप अक्सर देखते होंगे कि बुलबुल जहाँ जा बैठती है वहाँ से रह-रह कर ऊपर उड़ती है और फिर उसी जगह आ जाती है। कुछ लोगों का खयाल है कि इसका कारण बुलबुल की चुलबुलाहट है। वह इतनी चंचल है कि अधिक काल तक एक जगह बैठी नहीं रह सकती; इसलिये ऐसी हरकत करती रहती है। पर अधिक सम्भव यह है कि बुलबुल किसी उड़ते हुए कीड़े को पकड़ने के लिये इस प्रकार उड़ती है।

बुलबुलों की तृप्ति केवल कीड़ों-मकोड़ों से होती हो, यह बात नहीं है; वे फलाहार भी करती हैं। देखा गया है कि लाल रंग के छोटे फल इनके लिये विशेष आकर्षक होते हैं। बंगाल से एक बार रिपोर्ट मिली थी कि किसी ज़िले में लालमिर्च और टमाटर की खेती को बुलबुलों ने बड़ा नुक़सान पहुँचाया था। फिर भी हम उनपर नाराज़ नहीं हो सकते। उनसे हमारा केवल मनोरंजन ही नहीं होता, भलाई भी होती है। वे बहुतकर ऐसे कीड़े खाते हैं जो फ़सल को चट कर जानेवाले होते हैं। बुलबुलों में बुराई कम, भलाई अधिक है।

पक्षियों में प्रायः देखाजाता है कि नर और मादा का साथ कुछ ही दिनों के लिये होता है। अर्थात् जब सन्तान उत्पन्न करना होता है तब दोनों दम्पति के रूप में रहने लगते हैं। पर घोंसला बना, अण्डे दिये गये, बच्चे निकले और उड़ने लगे, इधर इन दोनों का सम्बन्ध-विच्छेद हुआ। नर कहीं जाता रहा और मादा कहीं। कुछ लोगों का खयाल है कि बुलबुल ऐसे पक्षियों में नहीं है। नर और मादा दोनों का सम्बन्ध चिरस्थायी होता है।

पर कुछ स्याह और कुछ सफ़ेद। जहाँ नर का रंग काला या स्याह रहता है, वहाँ मादा का रंग धूसर या भूरा। इनकी पूँछ प्रायः ऊपर की ओर उठी रहती है। मादा का गला उतना मीठा नहीं होता, जितना नर का। वह उतनी तेज़ भी नहीं होती। दोयल बड़ा चंचल पक्षी है। लड़ने में भी बहादुर है। जिस बाग़ में ख़ुद रहता है, उसमें दूसरे पक्षी को रहने देना नहीं चाहता। सुनते हैं, नेपाल में अमीर लोग इन्हें लड़ाने के लिये पालते हैं।

दोयल का आहार कीड़ा-मकोड़ा है। प्रायः यह आम के बग़ीचे में मिलता है। आबादी से दूर रहता है, पर कभी-कभी वहाँ भी पहुँच जाता है। मनुष्य से डरता नहीं। बल्कि कभी-कभी तो किसी मकान में ही घोंसला बनाकर डट जाता है।

इसका समय अप्रैल से जूनतक है। घोंसला किसी वृक्ष या दीवार के सूराख़ में घास-फूस और कभी-कभी वृक्षों के पत्तों को जुटाकर बनाता है। कभी-कभी इसका घोंसला कुढंगा होता है। तान और सुर ठीक करने में शायद इसका इतना समय लग जाता है कि घोंसले की ओर विशेष ध्यान नहीं दे पाता। अंडों की संख्या प्रायः चार होती है। देखने में सुन्दर होते हैं और रंग नीला-हरा होता है, ऊपर लाल-लाल बुँदकियाँ रहती हैं।

खंजन से इसकी आकृति मिलती-जुलती है। पर दोयल अपनी पूँछ को प्रायः खड़ा रखता है, और खंजन की तरह इसके सफ़ेद भौं नहीं होती। हाँ, चंचलता में तो उसीके समान है।

नीलकंठ

—++++—

कालिह दसहरा बीतिहैं, धरि मूरख, जिय लाज;
दुरयौ फिरत कत द्रुमनिमें नीलकंठ, बिनु काज !

—बिहारीलाल

नीलकंठ को यदि आपने न देखा हो तो अगले दसहरे के अवसर पर अवश्य देखें। पुण्य के साथ प्रसन्नता भी कम न होगी। उसके परों के रंग देखकर आप दंग रह जायँगे। चमकीली-भड़कीली पोशाक के लिये हमारे राजा-महाराजा मशहूर हैं तो हमारे पक्षी भी कुछ चीजें ऐसी रखते हैं कि देखनेवाले देखते रह जायँ और उनका जी न भरे। पर हाँ, उसके परों की बहार देखनी हो तो उसे उड़ते हुए देखिये। बैठ जाने से उस पर पर्दा सा पड़ जाता है और कुछ का कुछ दीखने लगता है। नीलकंठ के रंग में नीला प्रधान होते हुए भी और कई रंगों

मकोड़े खाकर रहती है। इसके घोंसला बनाने का समय मार्च से जुलाई या अगस्त तक है। उस समय नर बड़ी ही सुरीली बोली बोलता है। मादा साल में दो-तीन बार अंडे देती है। इसका घोंसला प्रायः सूखे घास-फूस का बना होता है, पर उसके लिये यह कभी-कभी और सामान भी जुटाती है। चिड़ियों के पर ऊन, रुई, मूँज की चटाई के टुकड़े, जो चीज़ हाथ लग गई, उसीको ले उड़ी। प्रायः प्रत्येक घोंसले में साँप की केंचुल भी मिलेगी। अगर मुहर्रम के दिनों में घोंसला बनाना पड़ा, तो ताज़िया बनाने के लिये जिन चीज़ों की ज़रूरत पड़ती है, उनका भी उपयोग कर लेगी—रंगीन कागज और अबरख के टुकड़ों से भी अपने मकान को सजा देगी। घोंसलों की सामग्री की तरह उनके स्थान भी विभिन्न होते हैं। कभी तो किसी मकान या मन्दिर-मसजिद की दीवार के सूराख में घर करती हैं, और कभी किसी पजावे में या नदी के कगार में। कभी इसका घोंसला टीन के ऐसे बर्तन में मिलता है, जो कहीं फेंक दिया गया हो। कभी उसके दर्शन काँटों की झाड़ी में होते हैं। एक ही घोंसले में साल-भर रहते हैं। अंडों की संख्या कभी दो या तीन होती है और कभी चार-पाँच या उससे भी ज़्यादा। रंग कुछ हरापन या गुलाबी लिये हुए सफ़ेद होता है, और उनपर बादामी रंग की बुँदकियाँ होती हैं—ख़ासकर चौड़े मुहँ के पास। अप्रैल के महीने में जितने अंडे मिलते हैं, उतने और समय नहीं।

दक्षिण में दामा के नर की पीठ बादामी रंग की न होकर काले रंग की होती है; मादा जैसी उत्तर में होती है, वैसी ही दक्षिण में।

की ओर मिलनेवाला दूसरा कठफोड़वा क़द में कुछ छोटा होता है, इसकी पीठ और डैने चितकबरे होते हैं। बंगाल में विशेषतः यही उपजाति मिलती है । नर की चोटी लाल रंग की होती है और ललाट में कुछ पीले पर होते हैं। मादा का सिर कुछ पीले रंग का होता है। तीसरी उपजाति गौरैये से भी कुछ छोटी होती है। रंग सफ़ेद और बादामी। इसको बौना कहते हैं। यह कभी-कभी झुण्ड में चलता है और वृक्ष की डालों पर जा बैठता है, जो बात दूसरे कठफोड़वों में नहीं पाई जाती।

इस पक्षी का नाम कठफोड़वा इसलिये पड़ा कि यह पेड़ या लकड़ी में छेद कर देता है । साधारणतः यह अपनी चोंच से पेड़ों की [illegible] को छेदता रहता है। छाल पर चोंच की ठोकर लगी, और [illegible] रहनेवाले कीड़े-मकोड़े घबराकर, बाहर निकल पड़े। [illegible] था, सीधे इसके पेट में पहुँच गये। इसके पंजे में दो [illegible] और दो पीछे होती हैं। नाखून तेज़ होते हैं। यह [illegible] से ही पेड़ [illegible] है और चक्कर लगाता हुआ [illegible] है। [illegible] दुम से बड़ी सहायता मिलती [illegible] हुई [illegible] उस समय यह तीसरे [illegible] है [illegible] गड़ गये, दुम [illegible]

[illegible] होती [illegible]

जाता है ।

मिलता है, उसे

सक्ती है, कि बिना देखे शायद ही कोई जान सके, कि पक्षी बोल रहा है। पहाड़ी मैना में यह गुण विशेष रूप से पाया जाता है और इसीलिये उसे प्रायः अपनी स्वतंत्रता से हाथ धोकर पिंजर-बद्ध होना पड़ता है।

मैना की कई उपजातियाँ हैं। उत्तर भारत में विशेषतः देशी मैना, दरिया मैना, गुलाबी मैना, तेलिया मैना, अबलख मैना और पहाड़ी मैना मिलती हैं।

देशी मैना

देशी या साधारण मैना देश-भर में पाई जाती है। पहाड़ों पर भी यह जा पहुँची है, और दार्जिलिङ्ग-जैसे स्थान में अब इसके दर्शन होने लगे हैं। पर इस देश की बात जाने दीजिये, अब तो यह विदेशों में भी मिलती है। मारीशस, न्यूज़ीलैन्ड, आस्ट्रेलिया में यहाँ की देशी मैना का वंश-विस्तार हो रहा है। कहीं-कहीं से तो यह रिपोर्ट आई है कि यह बड़ा अनर्थ कर रही है। वहाँ के कुछ खास पक्षी हैं जिनके अंडों और बच्चों के लिये यह खतरनाक साबित होरही है। प्रशान्त महासागर के एक द्वीप में यहाँ से देशी मैना लेजाकर बसाई गई थी। उसने थोड़े ही समय में वहाँ के कबूतरों को निकाल बाहर कर दिया। बाहर जाने से शायद यह कुछ ज्यादा ढीठ और शरारती बन जाती है। हानिकारक कीड़ों को नष्ट करने के लिये यह बसाई जाती है, पर पीछे स्वयं उत्पात मचाने लगती है।

इसका सिर काला और बाक़ी शरीर बादामी होता है। चोंच

जून तक ही सुन पड़ती है। बरसात में इसकी आवाज़ में वह बुलन्दी नहीं रहती और जाड़े में तो यह मौन-सा हो जाता है। यह सिन्ध या राजपूताना-जैसे प्रदेशों में नहीं पाया जाता, क्योंकि वहाँ वृक्षों का अभाव-सा है।

छोटा बसन्ता प्रायः गौरैये के बराबर होता है। डैने, पूँछ और शरीर के पर पीलापन लिये हुए हरे होते हैं; और ललाट तथा गरदन लाल। चोंच की जड़ में बिड़ाल की मूँछ की तरह कुछ बाल होते हैं। ठोड़ी, गला और आँख के पास के हिस्से पीले, चोंच काली और पैर लाल होते हैं। पैर में दो उँगलियाँ आगे और दो पीछे होती हैं। यह कठफोड़वे की तरह चोंच से काठ में छेद कर सकता है, पर उसकी तरह पेड़ पर चढ़ नहीं सकता। फुदक-फुदककर डालों पर घूमता फिरता है। इसकी बोली बड़ी विचित्र होती है, मानो ठठेरा तांबे को हथौड़े से ठोंक-पीट रहा हो। इसीलिये इसे अंगरेज़ी में "Coppersmith" कहते हैं। सर्दी के दिनों को छोड़ सालभर इसकी 'टक-टङ्क' टक-टङ्क' बोली आसानी से सुनी जा सकती है। कलकत्ते में इस जाति के पक्षी बहुसंख्यक होते हुए भी साधारणतः दीख नहीं पड़ते। इसका कारण यह है कि एक तो ये वृक्षों के नीचे बहुत कम उतरते हैं, दूसरे इनका रंग हरा होता है, इसलिये पत्तों में इस तरह हिल-मिल जाते हैं कि जल्दी पहचान में नहीं आते।

यह बचपन से ही बोलने लगता है, और बोलने से कभी थकता नहीं। बैशाख-जेठ में कड़ी धूप पड़ रही है, प्यास से सबका गला सूख रहा है, कौए से भी कॉव-कॉव नहीं किया जाता। पर बसन्ता

यह काम जारी रहता है। अंडे बरसात शुरू होजाने पर दिये जाते हैं। उनकी संख्या चार होती है और रंग नीला।

देशी मैना बड़ी आन-बान की चिड़िया है। किसीकी भी ज़्यादती बर्दाश्त नहीं कर सकती और डील-डौल में कोई पक्षी चौगुना भी हो, तो इसे भिड़ते देर नहीं लगती। जहाँ यह दाना चुगने जाती है, वहाँ दूसरे को देखकर कभी-कभी आग होजाती है और उसे धता बताने लगती है। मानों यह ज़मीन इसकी मौरूसी जायदाद हो, और उसमें पैर रखने का किसी भी दूसरे पक्षी को अधिकार न हो! साहस की मात्रा इसमें इतनी होती है कि चील या कौए से भी नहीं डरती और जब पीछे पड़जाती है, तब खदेड़ के ही दम लेती है। साथ ही यह झगड़ालू भी बड़ी है और आपस में भी इनकी दो-दो चोंचें खूब हुआ करती हैं। इनके लड़ाई-झगड़े अक्सर वैशाख-जेठ में देखने में आते हैं। वह इनके घोंसला बनाने और अंडे देने का समय है। जहाँ एक मादा और तीन-चार नर होते हैं, वहाँ यह प्रश्न उठता है कि वह किसके साथ रहेगी। और जब बातों से इसका निर्णय नहीं होता, तब चंगुल और चोंच काम में लाई जाती हैं। कभी-कभी योंही दो नरों की कुश्ती होने लगती है। पंजे से पंजा बँध जाता है और चोंच पर चोंच पड़ने लगती है। शोर मच जाता है, और थोड़े ही समय के भीतर कई दंगल होजाते हैं।

नर और मादा का रंग एक-सा ही होता है, पर मादा कुछ छोटी होती है। दक्षिण भारत की मैना का रंग इधर की अपेक्षा कुछ अधिक काला होता है।

है, त्यों-त्यों उसकी लाली बढ़ती जाती है। यह बहुत ही छोटी चिड़िया है, इसलिये इसकी चोंच मोटी होती है। रेलवे लाइन के पास या खुले मैदान में इसे देख सकते हैं। गुलाब की झाड़ियों में भी यह मिलती है। पेड़ों पर रहना इसे पसन्द नहीं। घोंसला ज़मीन के पास, किसी झाड़ी में, क्रिकेट की गेंद के आकार का बनाती है। अन्दर जाने के लिये सुराख रहता है। घास-फूस जुटाकर यह अपना घर तैयार करती है। पर उसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि यह किसी कारीगर का बनाया हुआ है। भीतर कभी-कभी नरम घास का बिछावन भी पाया जाता है। मुनियां अपना घोंसला अक्तूबर से जनवरी तक बनाती है और एकबार प्रायः छः अंडे देती है।

लाल मुनियां की प्रसिद्धि गाने के लिये है और इसके गुण के कारण लोग इसे पिंजरे में बन्द करके पालते हैं। एक पिंजरे में आप कितने ही लाल पावेंगे। रात को सब-के-सब पिंजड़े के छड़ पर क़तार से बैठकर सोते हैं, और जैसे मेले में कुछ लोग दूसरों को धक्का देकर आगे बढ़ जाते हैं उसी तरह किनारेवाले लाल भी, अक्सर बगल के साथियों को ढकेलकर, आप उनकी जगह आजाते हैं। बात यह है कि किनारे सर्दी कुछ ज्यादा मालूम देती है। इसलिये कोई लाल या मुनियां वहां सोना नहीं चाहती। प्रत्येक की यही चेष्टा रहती है कि दो के बीच में सोने की जगह पाजाय। और जिसे किनारे ही पड़ता है वह जबतक बीच में न आजाय, तबतक [illegible] को धक्का देता रहता है। यह धक[illegible] [illegible]ः रातभर जारी [illegible] बीच में से जो पक्षी अपनी [illegible] है, उसे [illegible]

गुलाबी मैना

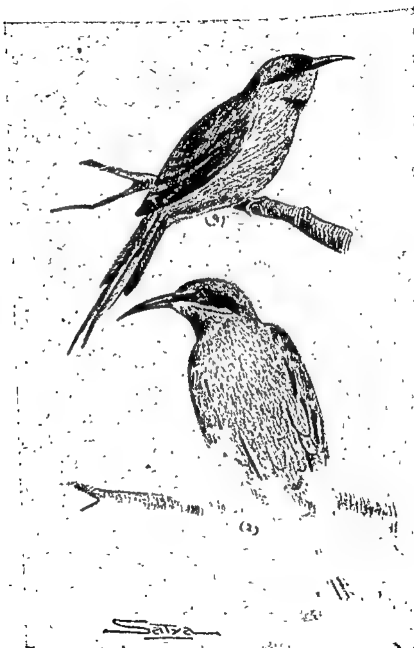
गुलाबी मैना बड़ी ही खूबसूरत चिड़िया है। इसके सिर, छाती और डैने बिल्कुल काले होते हैं; पर बाक़ी हिस्सा प्रायः गुलाबी। ज्यों-ज्यों समय बीतता है, गुलाबी रंग चढ़ता जाता है। यह झुण्ड में चलती है, पर साल-भर इस देश में नहीं रहती। जाड़े में यह और किसी देश में चली जाती है। इस देश में यह अण्डे नहीं देती। इसलिये इसको घोंसला बनाने की ऐसी कोई ज़रूरत नहीं पड़ती। यह फ़सल को बहुत नुक़सान पहुँचाती है। पर टिड्डी और टिड्डा जैसे कीड़े भी इसके खाद्य हैं।

तेलिया मैना

तेलिया मैना को तिलोरी भी कहते हैं। "पेडु तिलोरी औ जल हंसा"—इस पंक्ति में इस पक्षी का उल्लेख है। इसे तेलिया इसलिये कहते हैं कि इसका रंग काला और चमकीला होता है। पास जाने से कुछ बादामी चित्तियाँ भी नज़र आवेंगी। गुलाबी की तरह यह भी झुण्ड में चलती है और साल में कुछ ही महीने इस देश में बिताती है। आप इसे जब यहाँ देखेंगे, जाड़े में। यहाँ इसके घोंसले नहीं होते। यहाँ से कई हज़ार मील जाकर यह अण्डे देती है। इसका आहार मुख्यतः कीड़े हैं। गुलाबी की अपेक्षा तेलिया मैना ही इस देश में अधिक काल बिताती है।

अबलखा मैना

अबलख मैना का नाम अबलखा है—इसका शरीर काला, गाल



पतरिंगा

(१) [illegible] (२)

आँखें काली। पैर और सिर का चमड़ा पीले रंग के होते हैं।

यह पहाड़ पर ही पाई जाती हो, यह बात नहीं है। वर्मा और मध्य प्रान्त के दक्षिण-पूर्व भाग में भी यह पाई जाती है। पर अपनी बोली की विशेषता के कारण हम इसे साधारणतः पिंजरे में ही बन्द पाते हैं।

मैना के सम्बन्ध में कितनी ही मनोरञ्जक कहानियाँ प्रचलित हैं, जिनसे जान पड़ता है कि इसने यहाँ के लोगों के दिल में घर-सा कर लिया है। इसके विषय में अभी बहुत-कुछ लिखना बाकी है, पर स्थानाभाव के कारण हम मैना-रानी से यहीं से विदा माँगते हैं। पर एक प्रश्न करना है। सन्ध्या-समय इन पक्षियों की, अपने परिचित पेड़ों पर, जो सभा बैठती है, उसमें इतने ज़ोर-शोर से ये किन विषयों की चर्चा करते हैं? इसका पता लगाइये और इस पहेली का भी उत्तर दीजिए कि:—

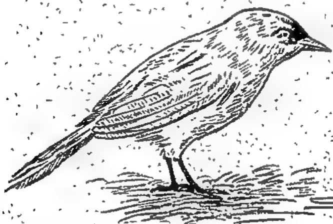
एक नार तरवर से उतरी, सर पर वाके पाँव,
ऐसी नार कुनार को, मैं ना देखन जाँव!



नहीं था और वहुत सम्भव है कि कुछ दिन बाद वह भी कहीं चल देगा। बस आते-जाते रहते हैं। इसकी एक उपजाति है जो एशिया और अफ्रीका से पश्चिमोत्तर प्रदेश में आती है और वहीं अण्डे देती है। दूसरी उपजाति है जो मई-जून में अफ्रीका से आकर पञ्जाब और कश्मीर में घर बनाती है। आम तौर से यह कहा जा सकता है कि इस देश में इनका जाड़ा दक्षिण में बीतता है और गरमी उत्तर में। पञ्जाब और पश्चिमोत्तर प्रदेश से यह सितम्बर में और उत्तर बिहार से यह अक्तूबर में विदा ग्रहण करता है। उड़ते हुए क़ीड़ों को पकड़ने के लिये इसे ऐसी आबोहवा चाहिये जो खुश्क हो। सर्दी और बेहद गरमी दोनों से ही यह बचना चाहता है।

जिस समय यह चोंच में किसी कीड़े को धर दबाता है, उस समय ऐसी आवाज़ होती है जो कई गज़ पर सुनाई देती है। छोटा कीड़ा हुआ तो यह उसे एक ही ग्रास में निगल जाता है, नहीं तो उसके अंग भंग करके खा जाता है।

इसकी सुन्दरता की बात ऊपर कही जा चुकी है। इसकी बोली भी सुहावनी है। पर मनुष्य की दृष्टि से इसमें एक बड़ा दुर्गुण है। यह मधुमक्खियों को चट कर जाता है। पूसा में कई बार यह उनका संहार कर चुका है। पतरिंगों का बस चले तो रोगी या निरोगी किसीको रत्तीभर भी शहद न मिल सके।



सतभइया

के सामान जुटाता है। घास-फूस, पत्ते, लकड़ी, छाल, चिथड़े, काँटे, कागज़, कपड़ा—इनके अलावा किसी-किसी घोंसले में ब्लाटिङ्ग पेपर और स्टाम्प भी मिलते हैं। पहले मादा कुछ मकड़ी का जाला लाकर उसे डाल में लपेट देती है, फिर उसमें कुछ घास-फूस जोड़कर आगे बढ़ती है। घोंसला आकार में मुट्ठी के बराबर होता है, और उसके भीतर कभी-कभी सेमल की रुई का बिछावन भी मिलता है। देखने में सुन्दर लगता है। कभी-कभी यह अपना घोंसला दीवार की कारनिस में बनाता है। घोंसला बनाने या उसके बाद अंडे सेने का काम शायद मादा को करना पड़ता है। नर या तो गाता या फूलों का रस पीता रहता है।

शकरखोरे का घोंसला बहुत ऊँचाई पर नहीं होता। यों तो उसमें साहस की कमी नहीं—मौक़ा पड़ने पर वह बड़े-से-बड़े पक्षी से भिड़ जाने को तैयार रहता है, पर सांप, कौए और गिलहरियाँ उसके अंडों को बहुत नष्ट करती हैं। फिर भी शकरखोरों की संख्या घटती नहीं दीखती। इसका मुख्य कारण यह है कि मादा साल में दो-तीन बार अंडे देती है। उनका रंग दूध-जैसा रहता है और उनपर कुछ बादामी चित्तियाँ होती हैं। प्रत्येक बार मादा दो, कभी-कभी तीन अंडे देती है।

टपकती है। फिर भी इसके जीवन की कितनी ही बातें मनोरंजक हैं और उनपर प्रकाश डालना आवश्यक है।

पहले तो यही देखिये, कि वह बराबर बोलता रहता है। झुंड के झुंड को आप शोर मचाते पायेंगे। पक्षियों की भाषा मनुष्यों की सी नहीं होती। उनकी भाषा में शब्दों की बड़ी कमी है और व्याकरण तो शायद है ही नहीं। हर्ष, क्रोध इत्यादि भावों को प्रकट करने के लिये कुछ ख़ास बोल हैं, और इसी थोड़ी-सी पूँजी से उन्हें दिन-भर काम चलाना पड़ता है। पर जिस प्रकार हम लोगों में कुछ ऐसे होते हैं, जो कहीं ज़बान खोलना नहीं चाहते और कुछ ऐसे होते हैं जो मौक़े बेमौक़े बोलते रहते हैं, उसी तरह पक्षियों में भी समझिये। कचबचिया को किचकिच करने में ही आनन्द मिलता है। कभी इसकी ज़बान बन्द नहीं रहती। जो इन पक्षियों के विषय में विशेष जानते हैं, उनका अनुमान है कि झुंड में चलनेवाले पक्षी इस तरह न बोलते रहें, तो सब साथ न रह सकें। जो पीछे रह जाता है, वह बोली सुनकर ही ज़माअत में जा मिलता है, इसलिये इनकी 'पार्टी' ज्यों-की-त्यों बनी रहती है।

सतभइयों में भाईचारा काफ़ी होता है। आपस में लड़ते-झगड़ते तो हैं, फिर भी औरों के मुक़ाबिले में एक बने रहते हैं। अगर एक को बाज़ ऊपर से पकड़ ले, तो बहुत सम्भव है कि बाक़ी उसपर टूट पड़ेंगे और अपने भाई को उसके चंगुल से निकालने के लिये कुछ भी उठा न रक्खेंगे। सच्चा सहोदर स्नेह किसे कहते हैं यह इनसे सीखा जा सकता है। देखा गया है कि जहाँ एक को पिंजरे से बाहर कर देते हैं, वहाँ उसको आज़ादी अच्छी नहीं लगती और वह क़ैदख़ाने में

बया

अचरज बंगला एक बनाया,
ऊपर नींव तले पर छाया,
बांस न बल्ली बंधन घने—
कह 'खुसरो' घर कैसे बने !

ढाका की मलमल मशहूर है। उसे बुननेवाले जुलाहे बड़े ही अच्छे कारीगर होंगे। किसी ज़माने में यूरोप के धनी समाज में भी इस मलमल की बड़ी खपत थी, और लोग इसकी खूबियां देखकर आश्चर्य करते थे, कि यहाँ के जुलाहों ने कैसी उँगलियां पाई हैं। पर ऐसे कुछ कारीगर पक्षियों के समाज में भी पाये जाते हैं। ये उँगलियों

पारस्परिक प्रीति युद्धकाल में ही नहीं, शान्ति के समय में भी देखने में आती है। अक्सर आपने देखा होगा, कि एक सतभइया चोंच से प्रेमपूर्वक दूसरे का सिर खुजा रहा है या उसके परों को साफ़ कर रहा है। पर आखिर ये पक्षी ठहरे, इनसे महात्माओं के से आचरण की आशा करना व्यर्थ है। स्नेह है, सहानुभूति है, पर पिंजरे में खाने-पीने की कोई चीज़ डाल दीजिये, फिर देखिये इनकी आपस में किस तरह दो-दो चोंचे होने लगती हैं। तमाशा देखना हो तो इनके बीच एक तेलचट्टा डालकर देख लीजिये। पल-भर में शान्ति अशान्ति में बदल जायगी और इनकी आपस में छीन-झपट होने लगेगी।

सतभइया उड़ने में बहुत कमज़ोर होता है। अनुमान है, कि एक उड़ान में शायद आधी मील भी नहीं जा सकता। साधारणतया हम इसे तीस-चालीस गज़ तक जाते देखते हैं। पर इसके पैरों में अच्छी ताक़त होती है, इसलिये फुदकने में बहादुर है। इनकी एकता का एक कारण यह भी हो सकता है कि अपनी रक्षा के लिये उड़कर दूर निकल जाना इनके लिये असंभव है। कभी-कभी आप देखेंगे कि किसी ऊँचे वृक्ष पर जा बैठता है, फिर उड़के दूसरे छोटे वृक्ष पर आजाता है। इस तरह आगे बढ़ता जाता है। डाली पर भी सतभइये फुदकते रहते हैं।

इनका आहार कीड़े-मकोड़े, छोटी-छोटी छिपकलियाँ और मेढक हैं। पूसा में एकबार जाँच की गई तो मालूम हुआ कि कीड़ों के अलावा वहाँवाले गूलर, बेर इत्यादि भी खाते हैं। बच्चों को प्राय झींगुर और गुबरैले लाकर खिलाते हैं। इन्हें झाड़ी-झुरमुट से प्रेम होता है।



हुदहुद



हुदहुद के सिर पर चोटी या कलगी होती है। इसकी एक कहानी सुनने लायक़ है:—

सुलेमान नाम के यहूदियों के मशहूर बादशाह होगये हैं। कुछ लोग उन्हें पैग़म्बर भी मानते हैं। इन्होंने देवों और परियों को वश में करलिया था, और पशु-पक्षी तक से काम लेते थे। उनका तख़्त भी करामाती था और जब वह चाहते, तब उन्हें ले उड़ता था। एक दिन आप उसी पर बैठे आसमान के रास्ते कहीं जारहे थे। बड़ी तेज़ गरमी पड़ रही थी, और जब आपसे वह बर्दाश्त न होसकी, तब आपने गीधों से कहा कि तुम अपने परों को फैलाकर मेरे ऊपर छाता तान दो, ताकि सूर्य्य की किरणें मुझे सता न सकें। मालूम नहीं क्यों

करने के लिये बया उसमें थोड़ी मिट्टी लाकर रख देता है। कुछ लोगों का कहना है कि बया रात को अन्धकार में रहना पसन्द नहीं करता, इसलिये जुगनू को पकड़ लाता है और उसी मिट्टी में उसको चिपका देता है। अर्थात् जुगनू से 'शमा' का काम लेता है और उस मिट्टी के छोटे-से लोंदे से शमादान का। मालूम नहीं असलियत क्या है, पर कुछ लेखकों को अभी इसकी सत्यता में सन्देह है। अगर हमारे किस पाठक को, बया के घोंसले में, कभी जुगनू मिले तो वह कृपा कर किसी पत्र या पत्रिका द्वारा इसकी सूचना अवश्य दें। जब तक जुगनू नहीं मिलता तब तक यही मान लेना ठीक जँचता है कि हवा के झोंकों से रक्षा करने के लिये ही, बया अपने घोंसले में मिट्टी लाकर रख देता है, और उसमें भारीपन ले आता है। बया के कितने ही जोड़े प्रायः एक वृक्ष पर ही घोंसले बनाते हैं। जो घोंसला अधूरा रह जाता है, उसे झूला कहते हैं। कुछ लोगों का खयाल है कि जिस समय मादा घोंसला बनाती रहती है उस समय नर, उसी झूले पर बैठ, उसके मनोरंजनार्थ गीत गाता रहता है। मालूम नहीं बात क्या है। हो सकता है कि घोंसले का कुछ हिस्सा तैयार हो जाने पर मादा को उससे सन्तोष नहीं होता, इसलिये उसे अधूरा छोड़ देती है। यह भी संभव है कि घोंसला पूरा-का-पूरा तैयार हो जाने पर, नर आमोद-प्रमोद के लिये ऐसा झूला तैयार कर लेता है।

बया को बुनने की ऐसी आदत होती है कि अगर आप उसे पिंजरे में रखें और उसे कुछ घास-फूस दे दें तो वह घोंसला बुनना शुरू कर देगा। अगर बचपन में पकड़ा जाये तो यह बड़ी आसानी

थैले के भीतर यह सेमल की रुई या वैसी ही नरम कोई और चीज़ बिछा देती है। इसका घोंसला बनाने का समय अप्रैल से अगस्त तक है। किसी घोंसले का मुँह ऊपर, किसी का नीचे और किसी का बगल में होता है। इसका घोंसला आपको आम या अमरूद के पेड़ पर मिलेगा। पर कभी-कभी बैंगन अर्थात् भांटे के पेड़ पर ही मिलता है—ज़मीन से कुल दो फ़ीट ऊंचा! घोंसला बनाने में नर भाग नहीं लेता, इसका सारा श्रेय मादा को है। संभव है नर की पूंछ के दोनों बिचले लम्बे पर बाधक हों, पर यह भी संभव हो सकता है कि वह आलस्य या अभिमान के कारण यह काम करना नहीं चाहता।

घोंसला प्रायः तीन इंच गहरा होता है, और दो इंच चौड़ा। अंडे तीन होते हैं, पर कभी-कभी चार भी। उनका रंग सफ़ेद होता है। घोंसला छोड़ने के बाद भी मां-बाप, कुछ दिनों तक, बच्चों की निगरानी करते हैं।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, फुदकियां और भी बहुत सी हैं। पर स्थानाभाव के कारण हम उन सबका परिचय देने में असमर्थ हैं।



समुचित पुरस्कार देना चाहता हूँ। बतलाओ, तुम अपनी जातिमात्र के लिये क्या स्वीकार करोगे ?"

हुदहुदों का सरदार घबराहट के मारे कुछ भी निश्चित न कर सका। उसने निवेदन किया कि "मुझे अपनी स्त्री और अपने समाज से सलाह-मशविरा करने के लिये एक दिन का समय मिले, फिर मैं यहाँ उपस्थित होकर इस प्रश्न का उत्तर दे सकूँगा।"

सुलेमान ने कहा—"ठीक है।"

सरदार ने घर लौटकर अपनी स्त्री को सारा क़िस्सा कह सुनाया। उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। सारे समाज की सभा बुलाई गई और सबके सामने विचारार्थ यह प्रश्न रक्खा गया कि सम्राट् से क्या याचना करनी चाहिए ? पर बहुत तर्क-वितर्क के बाद भी सर्व्वसम्मति से कोई प्रस्ताव पास न हो सका। अपनी-अपनी डफली और अपना-अपना राग—बस यही बात उस सभा में देखने में आई। अन्त में सरदारनी ने सरदार को अलग ले जाकर कहा—"तुम मेरी बात सुनो। दरबार में जाकर अपनी जाति के लिये सोने की कलगी, वर के रूप में, माँग लाओ। फिर तो अपना दर्जा और पक्षियों से कहीं ऊँचा हो जायगा।" उसकी बेटियों ने भी यह बात पसन्द की और कहा कि बस, बादशाह सलामत से यही इनाम लेना चाहिए।

सरदार ने दूसरे दिन दरबार में हाज़िर होकर वही वर माँगा। सुलेमान ने पूछा कि इस विषय में आगा-पीछा सोच लिया है या नहीं ? सरदार ने जवाब दिया कि सब-कुछ सोच लिया है, हम लोगों

किलकिला

—++++—

मेरे कान सुजान तुव नैन—किलकिला आइ,
हृदय-सिंधु ते मीन-मन तुरत पकरि लैजाइ !

—रसनिधि

शायद ही कोई देश ऐसा होगा जहाँ किलकिला न हो। भारत-वर्ष में यह सर्वत्र पाया जाता है, यद्यपि ऊँचे पहाड़ों पर इसके दर्शन नहीं होते। यही हाल बर्म्मा और सिलोन का है। यह उन पक्षियों में है जो अपना खास व्यक्तित्व रखते हैं। शकल-सूरत देखते ही आदमी कह देगा कि यह जाति का मछुआ है और मछली मारना इसका मुख्य व्यवसाय है।

बहेलिया रोज़ हुदहुद जाल में फँसा लाता और उनकी कलगियाँ उतार-कर उसी सोनार के हाथ बेच देता। एक दिन किसी जौहरी ने कलगी देखी तो बोल उठा कि कौन कहता है कि यह पीतल है, यह तो खालिस सोना है। और उसने सोने के भाव वह कलगी खरीद भी ली। फिर क्या था, बात-की-बात में सब जगह यह खबर फैल गई कि हुदहुद के माथे पर जो कलगी होती है वह सोने की है, और तमाम लोग हुदहुद की जान के गाहक बन गये। जब इनकी संख्या तेज़ी से घटने लगी तब सरदार और सरदारनी को वैसा वर माँगने का पछतावा होने लगा। पर सुलेमान के अन्तिम शब्दों को स्मरण कर, सरदार ने ढाढ़स बाँधा और निश्चय किया कि उन्हींकी शरण में चलना चाहिए। बड़ी मुश्किल से अपनी जान बचाता हुआ वह फिर उनके दरबार में हाज़िर हुआ और रो-रो कर अपनी बीती कह सुनाई। सुलेमान बोलेः—"बेवकूफ़, तुमने मेरी चेतावनी पर कुछ भी ध्यान न दिया, यह उसीका फल है। लोभ ने तुम्हारी विवेक-बुद्धि हर ली और मद ने तुम्हें अन्धा बना दिया। खैर, तुम्हारे पाप का प्रायश्चित्त हो चुका; अब मैं अपना वर लौटा लेता हूँ। तुम्हारी सेवा के पुरस्कार का स्मारक रहना ज़रूरी है, इसलिये तुम्हारी कलगी तो बनी रहेगी। पर वह सोने की न होकर साधारण परों की होगी।" तभी से हुदहुद ऐसी कलगीवाले होने लगे और उनकी संख्या घटने के बजाय दिन-दिन बढ़ने लगी।

नानी की कहानी को यहीं छोड़कर हम अब वैज्ञानिक दृष्टि से हुदहुद के विषय में कुछ लिखना चाहते हैं।

मछलियों को पूरा-का-पूरा निगल जाता है। इसके घोंसला बनाने का समय जनवरी से जून तक है।

कौड़ियाला

कौड़ियाला भी मैना के बराबर होता है। इसके पर कुछ सफ़ेद कुछ काले होते हैं। चोंच और पैर बिलकुल काले। इसका आहार केवल मछली है। यह किसी पेड़ की डाल पर बैठकर शिकार की राह नहीं देखता। पानी की सतह से कुछ ऊँचाई पर उड़ता रहता है और मछली देखते ही थोड़ी देर के लिये उड़ना बन्द कर देता है। फिर ऐसे वेग से नीचे आता है कि जान पड़ता है, ज़िन्दा ही न रहा। पर एक ही क्षण बाद मछली को चोंच में दबाये हुए बाहर निकलता है और किनारे जाकर उसे निगल जाता है। इसके घोंसला बनाने का समय जनवरी से अप्रैल तक है।

दरिया मैना की तरह किलकिला जाति के सभी पक्षी, नदियों के किनारे, कगारों में घोंसला बनाते हैं। घोंसला दो भागों में विभक्त होता है—पहले सुरंग-सा रास्ता तैयार करके फिर अंडे देने को जगह तैयार करते हैं। उसमें मछली के कांटे बिखरे रहते हैं और जो दुर्गन्ध आती है उसकी चर्चा न करना ही ठीक है। पक्षियों में कुछ तो अपने घर को बहुत साफ़-सुथरा रखते हैं, पर कुछ इस विषय में इतने उदासीन होते हैं कि मनुष्य के लिये उसके पास खड़ा होना असम्भव है।

हुद्हुद को अपनी सफ़ाई का बहुत खयाल रहता है । पर य
कौए की तरह जल का व्यवहार नहीं करता । इसके 'स्नान' करने व
तरीक़ा है घूल में लोटना । परों को इस प्रकार धूल-धूसरित करने
वास्तव में इनकी सफ़ाई हो जाती है । कुछ छोटे जीव या कीट
अक्सर ऐसे पक्षियों के परों में अपना घर कर लेते हैं और उन
खून चूसा करते हैं । धूल में लोट-पोटकर जब ऐसे पक्षी अपने परों
झाड़ देते हैं तब उनसे कुछ समय के लिये इनका पिण्ड छूट जाता है

हुद्हुद अपने घोंसले के लिये किसी प्रकार का सामान नहीं जुटाते
पेड़ हो या पुराना मकान, जहाँ कहीं काम के लायक सूराख मि
गया वहीं बसेरा कर लिया। सूराख का मुँह पतला ज़रूर हो
चाहिए। यह इसलिये कि कौए जैसे चोर-चाँई अंडे उड़ाने के लि
उसमें न घुस सकें। हुद्हुद स्वयं प्रवेश करते समय शरीर को समे
कर छोटा कर लेता है, इसलिये उसके मार्ग में यह संकीर्णता बाध
नहीं होती । मादा साल में दो बार अंडे देती है—चार से पांच तक
इनका रंग सफ़ेद होता है । अंडे देने के बाद वह शायद ही क
घोंसले से बाहर निकलती हो । उसे खिलाने-पिलाने का काम उसक
पति किया करता है । फ़रवरी-मार्च में—कभी-कभी जनवरी या अप्रै
में भी—हम देख सकते हैं कि नर अपनी चोंच में आहार ले आ
और सूराख के रास्ते मादा के मुँह में उसे पहुँचाकर फिर कहीं शिका
पकड़ने चला गया । जब अंडों से बच्चे निकल आते हैं तब मादा भी
शिकार के लिये जाने-आने लगती है ।

परन्तु और उल्लुओं से खुसट को यह विशेषता है कि वह प्रकाश को उतना बुरा नहीं मानता और कभी-कभी दिन-दहाड़े इधर-उधर उड़ता हुआ पाया जाता है।

साधारणतः उसके बाहर निकलने का समय सूर्यास्त के क़रीब है। सारा दिन किसी वृक्ष के कोटर या पुरानी दीवार के सूराख़ में बिताता है। बाहर निकलने का समय होते ही पहले देख लेता है कि दुनियाँ की क्या हालत है ! फिर किसी पेड़ की डाल या ऊँचे खंभे पर जा बैठता है। वहाँ थोड़ी देर तक चुप रहकर अपनी 'कच-कच' 'कुचकुच'—बोली बोलने लगता है। शायद इसीलिये उल्लू को कुचकुचवा भी कहते हैं। बोलता क्या है कभी-कभी सुननेवाले का कान खा जाता है। उस समय अगर वह आपको अपनी ओर टकटकी लगाये देख ले तो पहले तो बड़ी भयंकर सूरत बनाकर आपको घूरेगा, फिर कुचकुच करता हुआ कहीं चल देगा। मानो आपसे रुष्ट होकर, लड़-झगड़कर गया हो।

खुसटिया के अण्डे देने का समय फरवरी से अप्रैल तक है। अधिकांश मार्च में अण्डे देते हैं। इनकी संख्या तीन से पाँच तक होती है। रङ्ग शुरू में गुलाबी रहता है, फिर सफ़ेद रह जाता है। घोंसला या तो किसी पेड़ के खोखले हिस्से में या पुरानी इमारत के सूराख़ में, घास-फूस, सड़ी-गली लकड़ी या चिड़ियों के परों से बनाया जाता है। बच्चे भी माँ-बाप की तरह शोर मचानेवाले होते हैं।

उल्लू और पक्षियों के लिये अजनबी-सा होता है। इसलिये अगर वह कहीं भूल-भटक कर दिन में निकल पड़ता है तो दूसरे पक्षी, ख़ास

तक चुगने जाते हैं और फिर आप ही अपनी जगह लौट आते हैं। हमारे घर-आँगन में निर्भय और निःशंक होकर घूमते-फिरते हैं, मनमानी चीज़ें चुग-चुगकर खाते हैं। अक्सर हमारे मकान की छतों या कारनिसों में ही सारी उम्र बिता देते हैं—क्या दूसरा भी कोई पक्षी है जो इस विषय में कबूतर की बराबरी कर सके? वृक्षों की शरण लेना कबूतरों को अच्छा नहीं लगता—पालतू कबूतरों के लिए लोग लकड़ी का एक घर तैयार कराते हैं, जिसे 'दरबा' कहते हैं। पर जिन्हें ऐसा घर नहीं मिलता वे मकान की छत या चट्टान की खुली हवा में ही रात गुज़ार देते हैं। बड़े गोष्ठीप्रिय होते हैं। सैकड़ों कबूतरों का एक साथ रहना, उड़ना या विश्राम करना साधारण-सी बात है। कबूतर और फ़ाख़ता एक ही जाति के पक्षी हैं, पर कबूतर का आकार कुछ बड़ा होता है। साधारणतः इसका रंग कुछ नीलापन लिये हुए भूरा होता है। डैनों पर दो काली धारियाँ होती हैं। सूर्य का प्रकाश पड़ने पर इसकी गरदन की चमक देखते ही बनती है। पैर प्रायः लाल होते हैं, कुछ कबूतरों के बैंगनी या पीले भी। आँखों का रंग नारंगी होता है। इसके पैर की बनावट कुछ विचित्र-सी होती है—तीन उँगलियाँ आगे की ओर और एक पीछे की ओर होती हैं। सिर छोटा होता है, और शरीर भारी। डैने मज़बूत होते हैं। इसकी चोंच कुछ नरम और नाक के ऊपर-ऊपर कुछ फूली हुई-सी होती है। नर और मादा देखने में एक-से ही जान पड़ते हैं।

कबूतर की अनेक उपजातियाँ हैं। इनमें कुछ मशहूर कबूतरों के नाम हैं—गिरहबाज़, गोला, लोटन, लक्का, शीराज़ी, बग़दादी।

मनुष्य के हाथ से झपट कर ले जाती है, और फिर कहीं गिरा देती है। देखा नहीं पर सुना है कि कभी-कभी सुनार के हाथ से यह ज़ेवर भी झपट्टा मार कर ले जाती है। जहाँ मांस-मछली की दूकान होती है वहाँ चीलें वहुत मंडराती—और लूट-खसोट कर पराया माल अपना करती—रहती हैं।

चील प्रायः सभी गरम मुल्कों में पाई जाती है। आसमान में वहुत ऊँचाई पर, प्रायः विना पर हिलाये, चक्कर लगाया करती है। यह वहुत तेज़ उड़नेवाली चिड़िया है। इसका रंग खैरा या कत्थई होता है, परन्तु पैर पीले होते हैं। चोंच की ऊपरवाली हड्डी कुछ बड़ी, नुकीली और मुड़ी हुई होती है। उसकी बनावट ऐसी होती है कि मांस को आसानी से चीर-फाड़ सके।

चील एक नंवर की चालाक चोर और डाकू है। कभी-कभी मुर्गी के छोटे बच्चों को भी ले जाती है। साधारणतः यह कीड़े-मकोड़े, मांस-मछली के टुकड़े, गिरगिट, चूहे इत्यादि खाती है। इसके देखने की शक्ति आश्चर्य्यजनक है। खेत या मैदान में कोई चूहा निकला या मरा पड़ा हो तो यह उसे तीन-चार हज़ार फ़ीट उपर से देख सकती है। चील अपने शिकार को चोंच से नहीं, चंगुल से पकड़ती है, और फिर किसी पेड़ पर लेजाकर चीर-फाड़ कर खा जाती है। आपने देखा होगा, चील अपने चंगुल में कुछ दबाये जा रही है और कौए उसका पीछा कर रहे हैं। अक्सर ये उसके चंगुल से शिकार छीन-झपट लेते हैं। अगर उसकी आदत चोंच से पकड़ने की होती तो कौओं को यह साहस न होता।

पाचन-क्रिया पूरी की जाती है। कबूतर के भी ऐसी ही थैली होती है। आप मुट्ठीभर अन्न किसी कबूतर के सामने बखेर दें तो वह बात-की-बात में सबको ग़ायब कर देगा। वास्तव में, वह सब दानों को उसी थैली में रख लेता है। कबूतर की इस थैली से एक प्रकार का दूध निकलता है, और जबतक बच्चे अन्न खाने-लायक़ नहीं हो जाते, तबतक उन्हें यही दूध पीने को मिलता है। और चिड़ियों के बच्चे मुँह खोलकर खाना मांगते हैं, पर कबूतर के बच्चे अपनी मां की चोंच में अपनी चोंच डाल देते हैं और उसकी थैली का दूध पीकर अपनी भूख मिटाते हैं।

कबूतर प्रायः नाज के दाने चुगकर जीवन-निर्वाह करते हैं, पर कुछ ऐसे भी होते हैं जो केवल फल खाकर ही रहते हैं। दाना न मिलने पर दूसरी चीज़ों की ओर ध्यान देते हैं, जिनमें शायद कंकड़ भी शामिल हैं। बिहारीलालजी के दोहे में "भखु कांकरै" का संकेत कबूतर की इसी आदत की ओर है। सुनते हैं, इसके पेट में एक ऐसी चक्की है जो नाज के दानों के साथ इन कंकड़ों को भी पीस डालती है। कुछ कबूतर, अन्न के अभाव में, छोटे-छोटे घोंघों को ही अपना आहार बना डालते हैं।

ग़रीब कबूतर किसी दूसरे पक्षी से लड़ने-भिड़ने का कभी नाम नहीं लेता। पर मियां-बीबी आपस में कभी-कभी झगड़ पड़ते हैं। चोंच कमज़ोर होने के कारण उससे तो अस्त्र का काम नहीं ले सकते, किन्तु परों को खूब फड़फड़ाते हैं। पर इससे यह ख़याल करना कि कबूतरों का दाम्पत्य-जीवन सुखमय या शान्तिमय नहीं होता ग़लत

हमारा जो उपकार होता है उसे हमें नहीं भूलना चाहिये और उन्हें एक क्षण के लिये भी घृणा या तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखना चाहिये। अब गीध की बात लीजिये। इतने जीव रोज़ मरते हैं। कोई-कोई भले ही कहीं गाड़ दिये जायें, पर अधिकांश यों ही खुली हवा में फेंक दिये जाते या पड़े रहते हैं। मुर्दे का शरीर बड़ी तेज़ी से सड़ने-गलने लगता है और अगर उसको हज़म कर जानेवाले गीध न हों तो हवा इतनी गन्दी हो जाये कि नित नयी बीमारी पैदा हो और हम लोगों के लिये एक बड़ी ही भयंकर समस्या खड़ी हो जाय। संसार की सफ़ाई करनेवालों में गीध ऊँचा आसन पाने योग्य है। जब कभी हम उन्हें मुर्दार खाते देखें तो यह याद रखें कि वे हमारी भलाई कर रहे हैं।

गीधों के वंश में जटायु नाम के अमर शहीद हो गये हैं। इनकी कथा आपको रामायण में मिलेगी। दुष्ट रावण के हाथों से सती साध्वी सीता का परित्राण करने के प्रयत्न में इन्होंने अपने प्राण भी गवां दिये। इन्हींके उपकार को स्मरण कर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा थाः—

पर-हित बस जिनके मन माहीं
तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।

गीध की गरदन बे-पर की होती है। इसका कारण 'हुदहुद' के प्रकरण में बताया जा चुका है। कहते हैं कि यह सुलेमान नामक सिद्ध पुरुष के अभिशाप का फल है। गीध के डैने बहुत मज़बूत होते

हारिल

—++++—

हमारे हरि हारिल की लकरी ।

—सूर

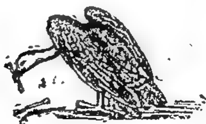
गही टेक छूटै नहीं, कोटिन करौ उपाय ।
हारिल धर पग ना धरै, उड़त-फिरत मरि जाय ॥

—अज्ञात कवि

हारिल कबूतर की जाति का पक्षी है, पर पेड़ से नीचे उतरना या मनुष्य से किसी तरह का रिश्ता जोड़ना नहीं चाहता । कुछ लोगों का खयाल है कि यह बड़ा अभिमानी है, इसीसे ज़मीन पर पैर नहीं

पायेंगे, जिसका रंग सफ़ेद होगा। सफ़ेद गीध के साधारणतः दो अंडे होते हैं और उनपर लाल बुंदकियां रहती हैं। घोंसला बनाते समय गीध का मिजाज कुछ गरम रहता है। उसके अंडों को कोई नष्ट नहीं करता, इसीलिये उनकी संख्या भी केवल एक या दो ही होती है। जिन पक्षियों की अधिक हानि होती है उन्हींको अधिक अंडे देने की जरूरत भी पड़ती है।

मुर्दार खाने की वजह गीध की देह से दुर्गंध बहुत आती है। पर इसका कोई इलाज नहीं है। गीध के स्नान करने का ढंग निराला है। वह न तो पानी में डुबकी लगाता है, न धूल में लोटपोट करता है। बस कहीं धूप में बैठ कर डैनों को फैला देता है और इस प्रकार सूर्य का सेवन करके ही अपनी सफ़ाई कर लेता है।



साधारण कबूतर की अपेक्षा, कुछ मोटा होता है। पूँछ, डैने और पंर छोटे होते हैं; चोंच मोटी और मज़बूत। यह अक्सर झुंड में चलता है।

हारिल पक्का फलाहारी है। पीपल, वड़ इत्यादि के फलों को यह बहुत ज़्यादा पसन्द करता है। नाज को तो छूना भी नहीं चाहता।

यह प्रायः शीशम के पेड़ पर, मार्च से जून-तक अपना घोंसला बनाता है। इस विषय में यह फ़ाख़्ता के समान है और इसका घोंसला बड़ा बेढ़ंगा होता है। वृक्ष ऊँचा होते हुए भी कभी-कभी यह अपना घोंसला ऐसी जगह बनाता है, जहाँ लोगों की नज़र उसपर आसानी से पड़ सकती है। अंडों का रंग सफ़ेद होता है और उनकी संख्या दो होती है।

इसकी आवाज़ कबूतर की गुटरगूं से नहीं मिलती। हम उसे एक तरह की सीटी कह सकते हैं। कहीं-कहीं हारिल अपने मीठे बोल के लिये पाले भी जाते हैं।

एक हारिल दक्षिणी होता है जिसे हम अक्सर उत्तर भारत में भी पाते हैं। साधारणतः यह पूरब में स्याम-देश और पश्चिम में यमुना नदी, इन्हीं दोनों के बीच मिलता है।

खाने में इसका मांस अच्छा समझा जाता है, इसलिए इसके शत्रुओं की कमी नहीं। न मालूम कितने हारिल रोज़ गोलियों के शिकार होते होंगे।

लहटोरा

अँगरेज़ी में इसका नाम बहुत बुरा है। इसे कसाई-चिड़िया कहते हैं। अपने आहार के लिये यह झींगुर, टिड्डी, छिपकली और ... भी छोटी-छोटी चिड़ियों का शिकार करता है। टेलीग्राफ़ के ... बबूल की डाल पर यह बैठा रहता है और किसी कीड़े या ... को देखते ही उसपर टूट पड़ता है और उसे ले उड़ता है। अगर ... हुआ तो यों ही चीर-फाड़कर खा जाता है, नहीं तो किसी पेड़ ... काँटे में उसे फंसा कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालता है। क्या ... तरह काँटे की सहायता से चीरने के कारण ही यह कसाई कहा जाता है? बहुत संभव है, ऐसा ही हो। ग्रेट ब्रिटन और अमेरिका में ... जाति के जो पक्षी मिलते हैं उनके विषय में कहा जाता है कि वे

चितरोख को शायद चितरवा भी कहते हैं। इसका रंग ईंट क
सा लाल होता है और डैनों पर चित्तियाँ होती हैं। पूँछ कुछ बड़ी हो
है। गरदन के पास कुछ स्याह और सफ़ेद धब्बे-से होते हैं—मा
शतरंज की बिसात का टुकड़ा हो। छोटी फ़ाख़्ता की गरदन के प
यह बिसात तो होती है, पर उसके डैनों पर चित्तियाँ नहीं होतं
उनका रंग भूरा होता है। दोनों की बोली में भी अन्तर होता
छोटी की बोली ज़्यादा सुहावनी लगती है। फ़ाख़्ता प्रायः कू-कू
तु-तु करती रहती है। इसीलिये एक कवि ने लिखा है कि—

भोर होत बोलहिं चुहचूही
बोलहिं पंडुक—एकै तूही ।

इसकी बोली को टुटरूँ-टूँ कहते हैं। धौरी या सिरोती की गरदन के पास शतरंज की वह बिसात नहीं होती। धौरी देखने में बहुत सुन्दर होती है। इसकी गरदन पर काली धारी होती है जिसको इसकी कंठी कह सकते हैं। इसका रंग ज़रा-सा नीला होता है और डैनों पर चित्तियाँ नहीं होतीं। चितरोख, छोटी और धौरी के नर और मादा दोनों एक-से होते हैं, पर सिरोती की बात और है। उसके नर के डैने लाल होते हैं, बाक़ी पर भी कुछ लालिमा लिये रहते हैं। मादा का रंग बादामी होता है और उसके डैने लाल नहीं होते। पर काली कंठी, नर और मादा दोनों में ही पाई जाती है। धौरी की अपेक्षा सिरोती छोटी होती है। इसकी बोली भी और पंडुकों से बिल्कुल भिन्न होती है।

पाई जाती है। दूसरी—गढ़वाल से आसाम तक। संयुक्तप्रान्त और विहार में दूसरी उपजाति ही मिलती है। प्रायः सभी बातों में दोनों समान होती हैं। पर पहली का रंग उतना गाढ़ा नहीं होता जितना दूसरी का।

महलाठ साहसी पक्षी है। काफ़ी होशियार भी है। प्रायः पेड़ पर ही रहता है। और वहीं इसे कीड़े-मकोड़े मिल जाते हैं। कभी-कभी उड़ते हुए शिकार करता है और ज़रूरत पड़ने पर नीचे भी उतर आता है। ज़मीन पर यह कुछ तृणों के बीज खाता है, साथ ही छिपकलियों की भी संख्या घटाता है। कभी-कभी ज़िन्दा साँप भी चोंच में पकड़ कर कलेवा करने के लिये कहीं ले जाता है।

जब फलाहार को इच्छा होती है तब लुकाट, केले या आड़ू पर भी टूट पड़ता है और बड़े खेद की बात यह है कि उनकी छोटी-छोटी डालियों या टहनियों को अपनी हरकतों से तोड़ डालता है। इसकी गिनती उन पक्षियों में की जाती है जो चोर-लुटेरे हैं। दूसरी चिड़ियों के अण्डे-बच्चे चुराने में सिद्धहस्त है। खासकर फ़ाख़ता के कितने ही बच्चे हर साल इसका मुखग्रास बनते हैं। मकोड़ों को यह बड़े चाव से खाता है और मिलजाने पर चमगादड़ को भी नहीं छोड़ता। शोर मचाने में यह भी एक नम्बर है। जहाँ ज़रा भी उत्तेजित हुआ कि ज़ोर-शोर से बोलने लगा। जब खुश रहता है तब मीठे बोल भी बोलता है। यों तो इसकी कई बोलियाँ हैं, पर विशेषकर 'कोक-ली' 'कोक-ली' करता रहता है।

महलाठ के घोंसला बनाने का और अण्डे-बच्चे होने का समय

तोता

सबज रंग औ मुख पर लाली,
उस पीतम गल कंठी काली।
भाव कुभाव जंगल में होता—ऐ सखी, साजन, ना सखी, तोता॥
अति सारँग है, रंग रंगीलो,
औ गुनवंत बहुत चटकीलो।
रामभजन बिन कभू न सोता—ऐ सखी, साजन, ना सखी, तोता॥

—"खुसरो"

तोता उन पक्षियों में है, जो प्रायः प्रत्येक देश में पाये जाते हैं। इसकी सैंकड़ों जातियाँ हैं। भारत में बारह प्रकार के तोते हैं,

शाह बुलबुल

इसके और भी कई नाम हैं जैसे हुसैनी बुलबुल, सुल्ताना बुलबुल, दूधराज इत्यादि। आकार-प्रकार में यह बहुत-कुछ बुलबुल से मिलता-जुलता है, पर है यह मक्खीमार जाति का। भारतवर्ष में पचास से भी अधिक प्रकार के मक्खीमार पक्षी मिलते हैं। इनमें सबसे प्रधान शाह बुलबुल है। यह अफ़गानिस्तान से सीलोन तक पाया जाता है। पर इस देश के ही भीतर स्थान बदलता रहता है। संयुक्त प्रान्त में शीतकाल बिताकर गरमी के दिनों में और कहीं चल देता है। उत्तर विहार में यह मार्च के अन्त में आता है और प्रायः अक्तूबर तक रहता है। पर एक बात है। जाते समय सब-के-सब नहीं चले देते। कुछ रह जाते हैं, इसीलिये कहीं-कहीं यह साल-भर देखा जाता है।

के मनोरंजन या भगवद्भजन का अच्छा साधन है। "सुआ पढ़ा गनिका तरि गई" तो प्रसिद्ध ही है। हरसाल हज़ारों पक्षी पिंजरे क़ैद होते हैं। मनुष्यों की बोली के अलावा यह तरह-तरह के भी सीख लेता है। किसी भी बड़े मेले में आप तोतों के खेल सकते हैं। कसरत करते हैं, फ़ौजी क़वायद दिखाते हैं, और छ मोटी तोपें दागते हैं। गोली लगने से कोई-कोई मरकर गिर पड़ पर थोड़ी ही देर बाद जी उठते हैं।

शौक़ीन लोग इसकी बोली सुनने के लिये इसे भले ही पालें, अपने रंग-रूप और चालाकी से यह हमारा मनोरंजन भले ही करे, भले ही किसीसे 'राम-राम' रटाकर उसके लिये स्वर्ग का द्वार खुलवा दे, किसानों का तो यह शत्रु है, और हर साल इससे फसल को अपरिमित हानि पहुँचती है। तोता शाकाहारी है, नाज और फल खाकर ही रहता है। पर इसकी ऐसी बुरी लत है कि यह नाज की बाल को ही तोड़ लेता है, और दो-एक दाने खाकर बाक़ी को फेंक देता है। फलों को भी बड़ा नुक़सान पहुँचाता है। फ़रवरी के महीने में सेमल के फूलों के पास तोतों का जमघट लग जाता है। पर हमारे कवियों का कहना है कि वहाँ इन्हें निराशा ही हाथ आती है— "सेमर सेइ सुआ पछिताने" यह कहावत आपने भी सुनी होगी। आसाम में इधर गन्ने की फ़सल पर भी तोते धावा बोलने लगे हैं। अंगरेज़ी में कहावत है कि "सुन्दर वही जो सुन्दर कार्य करे," पर इस हालत में हम, खेती की दृष्टि से तो, तोते को सुन्दर नहीं कह सकते, भले ही लोग हमें स्वार्थी कहें।

का छिछला-सा होता है। घास-फूस को मकड़ी के जाले से बांध कर ही यह उसे तैयार करता है। उसमें कभी-कभी घोड़े की पूंछ के बाल भी मिलते हैं। घोंसला प्रायः आम के दरख्त पर मिलता है। अंडों की संख्या तीन-चार होती है और उनका रंग गुलाबी। उनपर कुछ लाल-लाल बुंदकियां भी होती हैं। नर और मादा दोनों बारी-बारी से अंडे सेते हैं और बच्चों को खिलाने-पिलाने में भी दोनों एक दूसरे का हाथ बंटाते हैं। जिस समय नर अंडे सेता है उस समय उसकी लंबी लहरदार पूंछ घोंसले से नीचे लटकती रहती है।

हम यह कहना भूल ही गये कि शाह बुलबुल की नाक के ऊपर कुछ लंबे-से बाल होते हैं, जो कभी-कभी चोंच के सिरे तक पहुँच जाते हैं।



जिस आदमी में बेमुरव्वती होती है, उसको तोता-चश्म कह
हैं। क्यों ? बड़े तोते की आँख सफ़ेद होती है और बच्चे की काली
पर उसकी आँखों का ज़िक्र करने से क्या मतलब ? बात दरअस
यह है कि कितने ही दूसरे पक्षी पालने के स्थान पर उड़कर चले आ
हैं, पर तोता छूट जाने पर नहीं लौटता। मानो उसने नज़र बद
दी—बेमुरव्वती इख़्तियार कर ली—इसीलिये ऐसे आदमी भी तोत
चश्म कहे जाते हैं।

हिन्दी में एक दूसरा मुहाविरा है, तोते की तरह पढ़ना। इसक
अर्थ है बिना समझे-बूझे रटना। बालकों को पाठ याद करते समय
तोते की तरह नहीं पढ़ना चाहिये।



तीतर

तीतर, बटई, लवा न बांचे
सारस, कूज, पुछार जो नाचे ।

—जायसी

यूरोप और एशिया में शायद ही कोई देश हो जहां तीतर न पाया जाता हो। भारतवर्ष में इसकी दो उपजातियां मिलती हैं—एक तो चितकबरा तीतर और दूसरा काला तीतर।

चितकबरा तीतर ही अधिकतर पाया जाता है। यों तो इसका रङ्ग बादामी होता है, पर शरीर पर कुछ स्याह और सफ़ेद धारियों के होने से यह चितकबरा कहा जाता है। सिर पर ऐसी धारियां नहीं होतीं—उसका रङ्ग कुछ कत्थई-सा होता है। डैनों के कुछ पर भी कत्थई रंग के होते हैं और पैर लाल।

का अभाव हो जाता है। अधिकांश तो मर जाते हैं और जो बाक़ी बचते हैं, वे सर्दी से जान बचाने के लिये ऐसे सूराखों या बिलों में छिप जाते हैं कि पक्षी उन्हें पा ही नहीं सकते। ऐसी हालत में इन्हें उन देशों की शरण लेनी पड़ती है, जहाँ खाने को काफ़ी मिल सकता है। जब बसन्त-काल आता है और ये समझ जाते हैं कि अब घर पर कीड़ों की कमी न होगी तब अपने-अपने देश को चल देते हैं।

ऐसी यात्राएँ प्रायः बड़ी लम्बी होती हैं। सैकड़ों कोस आना-जाना पड़ता है। ख़याल कीजिये कि जिन पक्षियों को आप शीत-काल में यहाँ देखते हैं वे ग्रीष्म-काल में तिब्बत, रूस या चीन की हवा खाते रहते हैं। इसी प्रकार कुछ पक्षी उत्तर यूरोप से दक्षिण अफ़्रीकातक का—प्रायः छः हज़ार मील का—धावा मारते हैं। ऐसे पक्षियों के लिये एक उड़ान में डेढ़ सौ कोस पूरा कर देना मामूली-सी बात है। घण्टे में प्रायः बीस कोस उड़ते हैं और सात-आठ घण्टे लगातार उड़ते चले जाते हैं। प्रशान्त महासागर के हवाई नामक द्वीप में एक पक्षी अलास्का से उड़कर प्रवास करने आता है; इसको लगातार दो हज़ार मील उड़ना पड़ता है, क्योंकि इसके रास्ते में कोई ऐसा स्थान नहीं पड़ता जहाँ यह विश्राम कर सके।

हिमालय के उस पार से यहाँ आनेवाले पक्षी प्रायः ब्रह्मपुत्र की धारा का अनुसरण करते हैं, और जहाँ ऊँची चोटियाँ बाधक होती हैं, वहाँ घाटियों के बीच होकर निकल जाते हैं। ऐसे पक्षी प्रायः रात को सफ़र करते हैं।

सितम्बर में जिन नये पक्षियों का भारतवर्ष हर साल स्वागत

वनमुर्गी

यह चिड़िया आकार-प्रकार में छोटी मुर्गी से मिलती-जुलती है। इसीलिये इसे वनमुर्गी कहते हैं, पर यह रहती है पानी के किनारे और वहीं शिकार भी करती है। आपके गाँव में अगर कोई तालाब या नदी हो और उसके आस-पास झाड़ी या बंसवाड़ी हो तो आपको उसमें वनमुर्गी मिल सकती है। यों तो यह दूर से काली-सी दीखती है, पर इसका सारा शरीर काला नहीं होता। मुँह, गला और छाती सफ़ेद, चोंच का रंग हरापन लिये हुए, दुम के नीचे कुछ लाल पर—यही थोड़े में इसकी पहचान है। नर और मादा देखने में एक-से ही होते हैं। दुम को यह बराबर उठाये चलती है। इसी लिये आप नीचे के लाल परों को आसानी से देख सकते हैं। बंगाल में इसे शायद 'डाहुक' कहते हैं।

बुलबुल

—++++—

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा ।
हम बुलबुलें हैं उसकी वह गुलिस्ताँ हमारा ॥

—इक़बाल

बहुत ठीक—मगर जिस बुलबुल की ओर यहाँ इशारा है और जिसके तरानों की इतनी तारीफ़ है वह फ़ारिस में पाई जाती है इस देश में नहीं। मौलाना आज़ाद उस देश के वसन्त का वर्णन करते हुए लिखते हैं:—

"इधर गुलाब खिला [illegible] दास्तां
बैठी नज़र आई। [illegible] की टहनी [illegible]
दरख़्तों पर बोलती है [illegible] है। औ[illegible]

में नज़र आता है। इसका रंग किसी पक्षी में लाल और किसी में पीला होता है। वास्तव में पीली गुलथीवाली टिटिहरी की जाति ही अलग है। आँख के पास की गुलथी के रंग को छोड़ और बातों में दोनों समान-ही होती हैं। टिटिहरी की बोली विलाप-सी जान पड़ती है और यही कारण है कि यह अपशकुन मानी जाती है। टिटिहरी और कुररी एक ही पक्षी के नाम हैं, यद्यपि कुछ लोग ऐसा नहीं मानते।

यह पक्षी ज़मीन पर दौड़कर कीड़ों का शिकार करता है। इसके अंडा देने का समय मार्च से अगस्त तक है। पर इसके लिये नर या मादा कहीं घोंसला नहीं बनाती। यह ज़मीन पर ही अंडे देती है। हाँ, उनकी रक्षा करने के लिये इन्हें विशेषतः सावधान रहना पड़ता है। अप्रैल या मई के महीने में आप कहीं टिटिहरी को देर तक बैठे देखें तो समझ जाइए कि वह अपने अंडे से रही है। अंडों की संख्या चार होती है और उनका एक छोर नुकीला-सा होता है। चारों अण्डे इस हिसाब से रक्खे जाते हैं कि उनके नुकीले छोर आपस में मिल जाते हैं और उनके संयोग से + चिह्न-सा बन जाता है। बच्चे बहुत सुन्दर होते हैं और जन्म लेते ही दौड़ने लगते हैं। पर अगर आप उन्हें छेड़ेंगे तो उनके माँ-बाप अपनी रुलाई से आपको रुलाये बिना न रहेंगे। दिन में न हो सका तो रात को आपके मकान के ऊपर मंडरायेंगे और अपने करुण-क्रन्दन से आपकी और आपके पड़ोसियों की नींद उचटा देंगे।

बुलबुल

—+++—

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा ।
हम बुलबुलें हैं उसकी वह गुलिस्ताँ हमारा ॥

—इक़बाल

बहुत ठीक—मगर जिस बुलबुल की ओर यहाँ इशारा है और जिसके तरानों की इतनी तारीफ़ है वह फ़ारिस में पाई जाती है, इस देश में नहीं। मौलाना आज़ाद उस देश के वसन्त का वर्णन करते हुए लिखते हैं:—

"इधर गुलाब खिला, उधर बुलबुल हज़ारदास्तां उसकी शाख़ पर बैठी नज़र आई। बुलबुल न फ़क़त फूल की टहनी पर बल्कि घर-घर दरख़्तों पर बोलती है और चहचहे करती है। और गुलाब की टहनी

काली। इसके पैर हरापन लिये हुए धूसर रंग के होते हैं। गरमी के दिनों में पीठ का रंग कुछ लाल हो जाता है। इसकी नज़र बड़ी तेज़ होती है, यद्यपि भूल से कुछ लोग इसे अन्धा समझते हैं!

बगला शाकाहारी पक्षियों में नहीं है। मेढक, केकड़ा, छोटी मछली, पानी के कीड़े—बस ऐसे ही जीवों को इसका आहार समझिए। पानी से इसका रंग इतना मिलता-जुलता है और यह इतना शान्त या निस्तब्ध रहता है कि जलचर प्राणी भी भ्रम में पड़ जाते हैं और इसे कुछ और ही चीज़ समझकर निर्भय इसके पास चले आते हैं।

बगला शिकार तो अकेला ही करता है, पर रात को सोता है झुंड में। उस समय हम पचास-साठ बगलों को एकत्र देख सकते हैं। प्रायः ऐसे पेड़ पर रात बिताते हैं जो किसी झील या नदी के किनारे होता है। कभी-कभी अच्छी डाल पर सोने के लिये, आपस में लड़-झगड़ भी पड़ते हैं। इनकी बोली कोंक-कोंक-सी होती है।

इनके घोंसला बनाने का समय अप्रैल या मई महीना है। एक ही पेड़ पर कई जोड़े घर बाँध लेते हैं। घोंसले के लिये इन्हें सिर्फ़ कुछ टहनियाँ जुटानी पड़ती हैं, पर उसे देखकर यही कहना पड़ता है कि वह अनाड़ी का बनाया हुआ है। अंडों की संख्या चार होती है और उनका रंग हरा-सा होता है। बच्चे आकार को छोड़ और बातों में माँ-बाप के ही समान होते हैं। बया भी अक्सर उसी पेड़ पर अपना झूला लगाता है जिस पर बगला अपना बंगला तैयार करता है।

मोर

—++++—

उयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन-मोर

—भारतेन्दु

शिखिनि ! विरस-वदना हो बैठी तरु-शाखा पर तू कैसे ?
तेरे प्राण न देख श्याम को रोते हैं क्या मुझ जैसे ?

—"विरहिणी व्रजांगना"

कि

कुछ लोगों को इस बात पर आपत्ति
जैसे पक्षी को इस पुस्तक में आखिरी सीट
विश्वास दिलाता है, इसका कारण किसी
नहीं है। न तो उसे कौए से दोस्ती है न

नहीं सकती। आप अक्सर देखते होंगे कि बुलबुल जहाँ जा बैठती है वहाँ से रह-रह कर ऊपर उड़ती है और फिर उसी जगह आ जाती है। कुछ लोगों का खयाल है कि इसका कारण बुलबुल की चुलबुलाहट है। वह इतनी चंचल है कि अधिक काल तक एक जगह बैठी नहीं रह सकती; इसलिये ऐसी हरकत करती रहती है। पर अधिक सम्भव यह है कि बुलबुल किसी उड़ते हुए कीड़े को पकड़ने के लिये इस प्रकार उड़ती है।

बुलबुलों की तृप्ति केवल कीड़ों-मकोड़ों से होती हो, यह बात नहीं है; वे फलाहार भी करती हैं। देखा गया है कि लाल रंग के छोटे फल इनके लिये विशेष आकर्षक होते हैं। बंगाल से एक बार रिपोर्ट मिली थी कि किसी ज़िले में लालमिर्च और टमाटर की खेती को बुलबुलों ने बड़ा नुक़सान पहुँचाया था। फिर भी हम उनपर नाराज़ नहीं हो सकते। उनसे हमारा केवल मनोरंजन ही नहीं होता, भलाई भी होती है। वे बहुतकर ऐसे कीड़े खाती हैं जो फ़सल को चट कर जानेवाले होते हैं। बुलबुलों में बुराई कम, भलाई अधिक है।

पक्षियों में प्रायः देखाजाता है कि नर और मादा का साथ कुछ ही दिनों के लिये होता है। अर्थात् जब सन्तान उत्पन्न करना होता है तब दोनों दम्पति के रूप में रहने लगते हैं। पर घोंसला बना, अण्डे दिये गये, बच्चे निकले और उड़ने लगे, इधर इन दोनों का सम्बन्ध-विच्छेद हुआ। नर कहीं जाता रहा और मादा कहीं। कुछ लोगों का खयाल है कि बुलबुल ऐसे पक्षियों में नहीं है। नर और मादा दोनों का सम्बन्ध चिरस्थायी होता है।

है। सिर, गरदन और छाती का रंग नीला होता है; असली दुम और डैनों का रंग कत्थई। मादा आम तौर से कुछ फीके रंग की होती है।

मोर का नाच मशहूर है। जिसने इसे अपनी आंखों नहीं देखा, वह प्राकृतिक जगत् का एक अनोखा दृश्य देखने के सुख से वंचित रहा। पर इस नाच का मर्म समझने के लिये पक्षी-जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली एक खास बात जानना आवश्यक है।

कबूतर गुटकता है, श्यामा गाती है, मोर नाचता है—इन क्रियाओं को आप निरर्थक न समझें। पशु-पक्षिओं को अपनी प्राण-रक्षा और वंशवृद्धि के लिये तरह-तरह के उपायों का अवलम्बन करना पड़ता है। प्राणरक्षा का प्रश्न मुख्यतः आहार जुटने-जुटाने का प्रश्न है। इसलिये हम पक्षियों को सुबह से शाम तक (और उल्लू जैसे पक्षी को रात में) इस समस्या के हल में इतना मशगूल पाते हैं। पर विधि-विधान के पालन के लिये, उन्हें उदर-पूर्ति के बाद, इस महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर ध्यान देना पड़ता है कि उनकी जाति की सत्ता कैसे क़ायम रहेगी ? अपनी संख्यावृद्धि के लिये सचेष्ट होना पक्षियों का सहज स्वभाव है। थोड़े में हम इसे पक्षियों के विवाह या दाम्पत्य का प्रश्न कह सकते हैं।

नर और मादा—थोड़े समय या बराबर के लिये—इस संबन्ध-सूत्र में बंधकर सृष्टि की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। पर यह काम दोनों की अपनी मर्ज़ी, अपनी स्वीकृति से होता है। मां-बाप इसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करते—सच तो यह है कि उन्हें इस बात की फ़िक्र भी नहीं होती कि उनके बच्चों का ब्याह कब, कहां

यही कारण है कि इतने अण्डे नष्ट होते रहने पर भी बुलबुलों की संख्या घटती नहीं दीखती।

बुलबुलों को कुछ लोग लड़ाने के लिये पालते हैं। आपके गाँव या मुहल्ले में कोई बुलबुलबाज़ हो तो आप इन चिड़ियों की लड़ाई देख सकते हैं। हम लोगों में ऐसे बहुत कम होंगे जो तान भी उड़ाते हों और तलवार भी चलाते हों। पर बुलबुल में दोनों बातें पाई जाती हैं। अर्थात् वह गाती भी है और लड़ती भी है। जो बुलबुल लड़ने में कमाल करती है, उसके लिये कुछ लोग ५००) भी खुशी-खुशी दे देंगे।

हरेवा

इसे हरी बुलबुल भी कहते हैं। बड़ा ही सुन्दर पक्षी है। ललाट का रंग नारंगी होता है और गले का नीला। इसका कुछ हिस्सा काला भी होता है! बाक़ी शरीर हरा—'सर-सब्ज़'—समझिए। नर और मादा दोनों एक-से ही होते हैं, पर बच्चों का सारा शरीर एकसा—प्रायः हरा—होता है। कुछ बातों में यह साधारण बुलबुल से भिन्न-सा लगता है। इसके सिर पर कलगी या चोटी का नामो-निशान भी नहीं होता। इसकी चोंच लम्बी और मुड़ी हुई होती है। पैर और डैना काफ़ी मज़बूत। जीभ लम्बी-सी होती है, जिससे यह तरल खाद्य पदार्थों को चूसने के लिये बाहर निकालता है। फिर भी इसकी और आकृति-प्रकृति को देखते हुए विशेषज्ञों की सम्मति है कि, इसे बुलबुलों की श्रेणी में ही स्थान मिलना चाहिए।

हरेवा, अपने रंग-रूप की मनोहरता के कारण ही विशेष प्रसिद्ध

नीलकंठ

कालि्ह दसहरा बीतिहै, धरि मूरख, जिय लाज;
दुरयौ फिरत कत द्रुमनिमैं नीलकंठ, बिनु काज !

—बिहारीलाल

नीलकंठ को यदि आपने न देखा हो तो अगले दसहरे के अवसर पर अवश्य देखें। पुण्य के साथ प्रसन्नता भी कम न होगी। उसके परों के रंग देखकर आप दंग रह जायँगे। चमकीली-भड़कीली पोशाक के लिये हमारे राजा-महाराजा मशहूर हैं तो हमारे पक्षी भी कुछ चीजें ऐसी रखते हैं कि देखनेवाले देखते रह जायँ और उनका जी न भरे। पर हाँ, उसके परों की बहार देखनी हो तो उसे उड़ते हुए देखिये। बैठ जाने से उस पर पर्दा सा पड़ जाता है और कुछ का कुछ दीखने लगता है। नीलकंठ के रंग में नीला प्रधान होते हुए भी और कई रंगों

कठफोड़वा



भारतवर्ष में इस विचित्र पक्षी की पचास से अधिक उपजातियाँ हैं, पर बिहार की ओर साधारणतः तीन ही मिलती हैं। इनमें एक की पीठ सुनहले रंग की होती है। डैने भी इसी रंग के होते हैं, पर कुछ काले। आकार में कौए के समान समझिये। छाती सफ़ेद होती है, जिस पर कुछ काले दाग या धब्बे पाये जाते हैं। सिर के पास भी इन्हीं रंगों का मेल देखने में आता है। नर के सिर का ऊपरी हिस्सा लाल होता है, पर मादा का काला या चितकबरा। चोटी और आँखें लाल होती हैं। दुम के पर कुछ कड़े होते हैं और नीचे की ओर झुके हुए; रंग काला। चोंच बहुत तेज़ और मज़बूत होती है; जीभ लम्बी। यह विशेषता दूसरी उपजातियों की भी है। बिहार

फुर्ती आजाती है, और यह शोर भी ज़्यादा मचाता है। नर और मादा दोनों आसमान में तरह-तरह के खेल करते हैं। कभी उड़कर बहुत दूर ऊपर चले जाते हैं और वहाँ से इस तरह नीचे आते हैं कि जान पड़ता है इनके प्राण-पखेरू उड़ गये। पर झट सँभलकर फिर उड़ते हैं और दूसरी ओर चल देते हैं। कभी-कभी देखा जाता है कि नर और मादा दोनों पास ही पास बैठे हुए हैं, एकाएक नर उड़ पड़ा और दूर चला गया; फिर बड़े वेग से नीचे उतरा और बात-की-बात में मादा के पास आ बैठा। नर और मादा देखने में प्रायः एक-से ही होते हैं।

नीलकंठ अपना घोंसला किसी वृक्ष के कोटर या खोखले हिस्से में या किसी पुराने मकान के सूराख में बनाता है। उसके लिये घास-फूस, चिड़ियों के पर और चिथड़े जुटाता है। भीतर किसी तरह का गद्दा या बिछावन नहीं होता। कहीं-कहीं इसके घोंसले आसानी से नहीं मिलते। पर बिहार में यह बात नहीं है। एक बार प्रायः चार अंडे दिये जाते हैं। इनका रंग सफ़ेद होता है। अंडे सेने में प्रायः १८ दिन लग जाते हैं। जन्म के समय बच्चे अंधे होते हैं और उनके पर भी नहीं होते। पर चेंचें करते रहते हैं और ज्यों-ज्यों बढ़ते हैं उनकी आवाज़ कर्कश होती जाती है। बीस दिन बाद घोंसले से बाहर निकलते हैं। तबतक माँ-बाप दिनभर कीड़े या पतंगे लाकर उन्हें खिलाते रहते हैं। इन दिनों नीलकंठ का मिज़ाज गरम रहता है। कौए या चील अगर उसके घोंसले के पास से गुज़रें और उसमें अंडे या बच्चे हों तो यह उनकी बुरी तरह ख़बर लेने को तैयार होजाता है।

ले से नीचे उतारती जाती है । ज़मीन पर यह कूद-कूद कर कीड़े पकड़ता है। इसमें अच्छी तरह उड़ने की शक्ति नहीं है। इसीलिये पेड़ पर उछलता-कूदता चढ़ता है।

उत्तर भारत में कठफोड़वा मार्च-अप्रैल के लगभग अपने रहने की जगह तैयार करता है, पर और पक्षियों की तरह घास-फूस या वृक्ष की टहनियों से नहीं। पेड़ में सूराख करके ही यह अपना घर बनाता है। अगर कोई बना-बनाया घर अर्थात् वृक्ष का कोटर या खोखला हिस्सा मिल गया तब तो वहीं धूनी रमा देता है, नहीं तो काठ फोड़कर, अपना नाम पूरी तरह सार्थक करता हुआ, रहने का प्रबन्ध कर लेता है। उस समय यह चोंच से चोट-पर-चोट करता है जिसकी आवाज़ दूर तक सुनाई देती है। इस काम में बड़ी मेहनत करनी पड़ती है, कई दिन लग जाते है। पर इसके धीरज की बलिहारी है कि काठ में छेद करके ही छोड़ता है और छेद भी ऐसा गोल और खूबसूरत कि देखनेवाले चकित रह जाते हैं। छेद प्रायः पाँच इञ्च चौड़ा होता है और भीतर प्रायः पाँच इञ्च गहरा। पर अपने घोंसले को यह साफ़-सुथरा नहीं रखता। उससे बड़ी दुर्गन्ध आती है। इसके अंडों की संख्या तीन होती है। घर बनाने और बच्चों का लालन-पालन करने में नर और मादा दोनों का पूर्ण सहयोग रहता है। यह प्रायः आम के पेड़ पर बसेरा करता है। बिहार में आम, लीची, शीशम और शिरीष-जैसे पेड़ों पर पाया जाता है।

कठफोड़वा देखने में सुन्दर होता है, पर इसकी बोली बड़ी कर्ण-कटु होती है। इस विषय में यह नीलकण्ठ के समान है।

की ओर मिलनेवाला दूसरा कठफोड़वा कद में कुछ छोटा होता है, इसकी पीठ और डैने चितकबरे होते हैं। बंगाल में विशेषतः यही उपजाति मिलती हैं। नर की चोटी लाल रंग की होती है और ललाट में कुछ पीले पर होते हैं। मादा का सिर कुछ पीले रंग का होता है। तीसरी उपजाति गौरैये से भी कुछ छोटी होती है। रंग सफ़ेद और बादामी। इसको बौना कहते हैं। यह कभी-कभी झुण्ड में चलता है और वृक्ष की डालों पर जा बैठता है, जो बात दूसरे कठफोड़वों में नहीं पाई जाती।

गले से नीचे उतारती जाती है । ज़मीन पर यह कूद-कूद कर कीड़े पकड़ता है । इसमें अच्छी तरह चलने की शक्ति नहीं है । इसीलिये पेड़ पर उछलता-कूदता चढ़ता है ।

उत्तर भारत में कठफोड़वा मार्च-अप्रैल के लगभग अपने रहने की जगह तैयार करता है, पर और पक्षियों की तरह घास-फूस या वृक्ष की टहनियों से नहीं । पेड़ में सूराख़ करके ही यह अपना घर बनाता है । अगर कोई बना-बनाया घर अर्थात् वृक्ष का कोटर या खोखला हिस्सा मिल गया तब तो वहीं धूनी रमा देता है, नहीं तो काठ फोड़कर, अपना नाम पूरी तरह सार्थक करता हुआ, रहने का प्रबन्ध कर लेता है । उस समय यह चोंच से चोट-पर-चोट करता है; जिसकी आवाज़ दूर तक सुनाई देती है । इस काम में बड़ी मेहनत करनी पड़ती है, कई दिन लग जाते हैं । पर इसके धीरज की बलिहारी है कि काठ में छेद करके ही छोड़ता है और छेद भी ऐसा गोल और ख़ूबसूरत कि देखनेवाले चकित रह जाते हैं । छेद प्रायः पाँच इञ्च चौड़ा होता है और भीतर प्रायः पाँच इञ्च गहरा । पर अपने घोंसले को यह साफ़-सुथरा नहीं रखता । उससे बड़ी दुर्गन्ध है । इसके अंडों की संख्या तीन होती है । घर बनाने और बच्चों के लालन-पालन करने में नर और मादा दोनों का पूर्ण सहयोग है । यह प्रायः आम के पेड़ पर बसेरा करता है । बिहार में ... शीशम और शिरीष-जैसे पेड़ों पर पाया जाता है । ... देखने में सुन्दर होता है, पर इसकी बोली बड़ी कर्ण-... । इस विषय में यह नीलकण्ठ के समान है ।

की ओर मिलनेवाला दूसरा कठफोड़वा क़द में कुछ छोटा इसकी पीठ और डैने चितकबरे होते हैं। बंगाल में विशेष उपजाति मिलती है ।नर की चोटी लाल रंग की होती ललाट में कुछ पीले पर होते हैं। मादा का सिर कुछ पीले होता है। तीसरी उपजाति गौरैये से भी कुछ छोटी होती सफ़ेद और बादामी। इसको बौना कहते हैं। यह कभी-कभी चलता है और वृक्ष की डालों पर जा बैठता है, जो बात दू फोड़वों में नहीं पाई जाती।

इस पक्षी का नाम कठफोड़वा इसलिये पड़ा कि यह लकड़ी में छेद कर देता है । साधारणतः यह अपनी चोंच की छाल को छेदता रहता है। छाल पर चोंच की ठोकर ल उसके नीचे रहनेवाले कीड़े-मकोड़े घबराकर, बाहर निक बस फिर क्या था, सीधे इसके पेट में पहुँच गये। इसके पं उँगलियाँ आगे और दो पीछे होती हैं। नाखून तेज़ होते पंजों के बल से ही पेड़ पर चिपक जाता है और चक्कर लगा ऊपर चढ़ता है। चिपकने में इसे अपनी दुम से बड़ी सहायता है। मुड़ी हुई और कड़ी होने के कारण उस समय यह तीसरे काम देती है। पंजे के नाखून छाल में गड़ गये, दुम स्टूल-स सी बन गई, कठफोड़वा मज़े से चिपका हुआ अपना काम जाता है। जीभ इसकी लम्बी होती है और यह उसीकी म कीड़ों को पकड़कर निगल जाता है। चोंच छाल छेदती ह और उससे जो शिकार मिलता है, उसे लम्बी और लसदा

टक-टङ्ग टक-टङ्ग सुनाता जारहा है। पर ऐसा वकवादी होकर भी छोटा वसन्ता कुछ उदास-सा रहता है, कम-से-कम यह मिलनसार नहीं होता। प्राचीन-काल के तपस्वियों की तरह एकान्तवास करता है, और वोलने के सिवाय और किसी तरह की ज़िंदादिली नहीं दिखाता। एक वात ज़रूर है। चोंच इसने ऐसी पाई है कि काठ में छेद कर सकता है, पर साथ ही शान्त प्रकृति का पक्षी है, लड़ाई-झगड़ा पसन्द नहीं करता—नहीं तो चोंच से ठुकरा कर कितने ही पक्षियों के पेट में छेद कर देता!

छोटे और वड़े—इस जाति के सभी पक्षी विशेषतः फल खाकर रहते हैं। कीड़े खाते हैं, पर वहुत कम। छोटे के विषय में लोगों की धारणा थी कि वह जंगली फल खाकर ही रहता है, वाग़-वग़ीचे के फलों को नहीं छूता, पर यह ग़लत है। लोगों ने उसे, वड़े ही चाव से अमरूद खाते देखा है।

घोंसला वनाने का समय मार्च से जून तक है। विहार में वड़ा वसन्ता अप्रैल तक यह काम समाप्त कर देता है। उसके लिये यह पेड़ की डाल में चोंच से सूराख़ करता है। घोंसला प्रायः २० फ़ीट या इससे भी अधिक ऊपर रहता है, पर कभी-कभी उंचाई कम भी होती है। उसका मुँह या दरवाज़ा नीचे की ओर रहता है, जिससे वरसात के दिनों में उसमें पानी न भरजाय। प्रायः ऐसी डाल पर डेरा डालता है जो खोखली होती है। यदि उसमें कुछ कमी हुई तो चोंच से सब कुछ [illegible] ले सुरंग-सा रास्ता वनाकर फिर रहने का कमरा [illegible] प्रायः छः इञ्च से दो फ़ीट और चौड़ाई

जून तक ही सुन पड़ती है। बरसात में इसकी आवाज़ में वह बुलन्दी नहीं रहती और जाड़े में तो यह मौन-सा हो जाता है। यह सिन्ध या राजपूताना-जैसे प्रदेशों में नहीं पाया जाता, क्योंकि वहाँ वृक्षों का अभाव-सा है।

छोटा बसन्ता प्रायः गौरैये के बराबर होता है। डैने, पूँछ और शरीर के पर पीलापन लिये हुए हरे होते हैं; और ललाट तथा गरदन लाल। चोंच की जड़ में बिड़ाल की मूँछ की तरह कुछ बाल होते हैं। ठोड़ी, गला और आँख के पास के हिस्से पीले, चोंच काली और पैर लाल होते हैं। पैर में दो उँगलियाँ आगे और दो पीछे होती हैं। यह कठफोड़वे की तरह चोंच से काठ में छेद कर सकता है, पर उसकी तरह पेड़ पर चढ़ नहीं सकता। फुदक-फुदककर डालों पर घूमता फिरता है। इसकी बोली बड़ी विचित्र होती है, मानो ठठेरा तांबे को हथौड़े से ठोंक-पीट रहा हो। इसीलिये इसे अंगरेज़ी में "Coppersmith" कहते हैं। सर्दी के दिनों को छोड़ सालभर इसकी 'टक-टङ्ग' टक-टङ्ग' बोली आसानी से सुनी जा सकती है। कलकत्ते में इस जाति के पक्षी बहु-संख्यक होते हुए भी साधारणतः दीख नहीं पड़ते। इसका कारण यह है कि एक तो ये वृक्षों के नीचे बहुत कम उतरते हैं, दूसरे इनका रंग हरा होता है, इसलिये पत्तों में इस तरह हिल-मिल जाते हैं कि जल्दी पहचान में नहीं आते।

यह बचपन से ही बोलने लगता है, और बोलने से कभी थकता नहीं। बैशाख-जेठ में कड़ी धूप पड़ रही है, प्यास से सबका गला सूख रहा है, कौए से भी कांव-कांव नहीं किया जाता। पर बसन्ता

टक-टङ्क टक-टङ्क सुनाता जारहा है। पर ऐसा बकवादी होकर भी छोटा बसन्ता कुछ उदास-सा रहता है, कम-से-कम यह मिलनसार नहीं होता। प्राचीन-काल के तपस्वियों की तरह एकान्तवास करता है, और बोलने के सिवाय और किसी तरह की ज़िंदादिली नहीं दिखाता। एक बात ज़रूर है। चोंच इसने ऐसी पाई है कि काठ में छेद कर सकता है, पर साथ ही शान्त प्रकृति का पक्षी है, लड़ाई-झगड़ा पसन्द नहीं करता—नहीं तो चोंच से ठुकरा कर कितने ही पक्षियों के पेट में छेद कर देता!

छोटे और बड़े—इस जाति के सभी पक्षी विशेषतः फल खाकर रहते हैं। कीड़े खाते हैं, पर बहुत कम। छोटे के विषय में लोगों की धारणा थी कि वह जंगली फल खाकर ही रहता है, बाग़-बग़ीचे के फलों को नहीं छूता, पर यह ग़लत है। लोगों ने उसे, बड़े ही चाव से अमरूद खाते देखा है।

घोंसला बनाने का समय मार्च से जून तक है। बिहार में बड़ा बसन्ता अप्रैल तक यह काम समाप्त कर देता है। उसके लिये यह पेड़ की डाल में चोंच से सूराख़ करता है। घोंसला प्रायः २० फ़ीट या इससे भी अधिक ऊपर रहता है, पर कभी-कभी ऊंचाई कम भी होती है। इसका मुंह या दरवाज़ा नीचे की ओर रहता है, जिससे बरसात के दिनों में उसमें पानी न भरजाय। प्रायः ऐसी डाल पर डेरा डालता है जो खोखली होती है। यदि उसमें कुछ कमी हुई तो चोंच से सब कुछ ठीक करलेता है। पहले सुरंग-सा रास्ता बनाकर फिर रहने का कमरा बनाता है। सुरंग की लंबाई प्रायः छः इञ्च से दो फ़ीट और चौड़ाई

प्रायः ढाई इञ्च होती है। कमरे की चौड़ाई प्रायः पाँच इञ्च होती है। इसकी चोंच कठफोड़वे की अपेक्षा ज़्यादा मोटी और तेज़ होती है, उसीसे यह सूराख़ तैयार कर लेता है। बड़े के अंडे सफ़ेद-से होते हैं और उनकी संख्या प्रायः तीन या चार होती है।

दो बरस तक कभी-कभी एकही घोंसला काम देता है। बच्चे उड़ने लायक़ होने पर कहीं चल देते हैं, पर माँ-बाप रात को उसी घोंसले में सोते हैं। उत्तर भारत में छोटा बसन्ता मार्च से मई तक घोंसला बनाता है। सुरंग की लंबाई एक से पाँच फ़ीट तक होती है और कमरे की चौड़ाई प्रायः दो इञ्च। छेद करते समय यह पक्षी कठफोड़वे की तरह डाल से चिपका रहता है। इस काम में नर और मादा दोनों ही भाग लेते हैं। घोंसले में घास-फूस बिछाने की कोई ज़रूरत नहीं पड़ती। लकड़ी की एक मचान-सी होती है, उसी पर अंडे दिये जाते हैं। इनकी संख्या प्रायः तीन-चार होती है और रंग, शुरू में, गुलाबी—फिर कुछ दिन बाद बिलकुल सफ़ेद। बच्चों का रंग माँ-बाप की तरह गाढ़ा नहीं होता। उनके ललाट में ललाई भी नहीं होती।

कुछ लोग छोटे की टक-टङ्क टक-टङ्क सुनते-सुनते तंग आजाते हैं और इसे भला बुरा कहने लगते हैं। पर इसकी बोली कर्कश नहीं होती—यह बहुतों ने स्वीकार किया है।

लाल-मुनियाँ

ते अपने अपने मिलि निकसी भाँति भली—
मनु लाल-मुनिन की पाँति पिंजर दूरि चली।

—सूर

लाल या लाल मुनियाँ भारतवर्ष के प्रसिद्ध पक्षियों में है। पहले-पहल यह चिड़िया अहमदाबाद से इंगलैंड भेजी गई थी, इसलिये इसे अंगरेज़ी में "Amdavat" कहते हैं—वास्तव में लाल नर का और मुनियाँ मादा का नाम है।

इसका शरीर भूरापन लिये हुए लाल रंग का होता है। इसपर छोटी-छोटी सफ़ेद बुंदकियाँ होती हैं। ज्यों-ज्यों लाल की उम्र ज़्यादा होती

है, त्यों-त्यों उसकी लाली बढ़ती जाती है। यह बहुत ही छोटी चिड़िया है, इसलिये इसकी चोंच मोटी होती है। रेलवे लाइन के पास या खुले मैदान में इसे देख सकते हैं। गुलाब की झाड़ियों में भी यह मिलती है। पेड़ों पर रहना इसे पसन्द नहीं। घोंसला ज़मीन के पास, किसी झाड़ी में, क्रिकेट की गेंद के आकार का बनाती है। अन्दर जाने के लिये सुराख रहता है। घास-फूस जुटाकर यह अपना घर तैयार करती है। पर उसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि यह किसी कारीगर का बनाया हुआ है। भीतर कभी-कभी नरम घास का बिछावन भी पाया जाता है। मुनियाँ अपना घोंसला अक्तूबर से जनवरी तक बनाती है और एकबार प्रायः छः अंडे देती है।

लाल मुनियाँ की प्रसिद्धि गाने के लिये है और इसके गुण के कारण लोग इसे पिंजरे में बन्द करके पालते हैं। एक पिंजरे में आप कितने ही लाल पावेंगे। रात को सब-के-सब पिंजड़े के छड़ पर क़तार से बैठकर सोते हैं, और जैसे मेले में कुछ लोग दूसरों को धक्का देकर आगे बढ़ जाते हैं उसी तरह किनारेवाले लाल भी, अक्सर बग़ल के साथियों को ढकेलकर, आप उनकी जगह आजाते हैं। बात यह है कि किनारे सर्दी कुछ ज्यादा मालूम देती है। इसलिये कोई लाल या मुनियाँ वहाँ सोना नहीं चाहती। प्रत्येक की यही चेष्टा रहती है कि दो के बीच में सोने की जगह पाजाय। और जिसे किनारे ही पड़ता है वह जबतक बीच में न आजाय, तबतक को धक्का देता रहता है। यह धक्कम[illegible] [illegible]ः रातभर जारी [illegible] बीच में से जो पक्षी अपनी [illegible] है, उसे [illegible]

पड़ता है, पर जब उसे सर्दी सताती है, तब वह भी वैसी ही हरकत करने लगता है।

इनके गाने का ढंग निराला है, एक के बाद दूसरे का तराना शुरू होता है और सब मिलकर ऐसा रंग जमाते हैं कि सुननेवाले को "कन्सर्ट" का-सा आनन्द प्राप्त होने लगता है।

इनके फंसाने का तरीक़ा यह है कि पिंजरे में तीन-चार लाल-मुनियाँ पहले से ही रख छोड़ते हैं, फिर किसी पटरी पर कुछ दाने बखेर कर और उसमें डोरी बाँधकर कहीं रख देते हैं। बाहरवालों को भ्रम होता है कि दाने योंही पड़े हुए हैं और अपने भाई उन्हें चुग रहे हैं। सो वे भी वहाँ पहुँच जाते हैं। उनके पहुँचते ही डोरी खींच ली जाती है। इससे पटरी उठ जाती है और पिंजरा बन्द हो जाता है।

हरी मुनियाँ

हरी मुनियाँ लाल मुनियाँ की अपेक्षा कम मिलती है। इसका रंग हरा होता है। चोंच लाल रहती है और नीचे के पर पीले। कुछ पर सफ़ेद भी होते हैं। यह सब से छोटी मुनियाँ है।

चरचरा

इस जाति के पक्षियों में सब से साधारण चरचरा है। यह प्रायः झुंड में चलता है और आबादी में भी आता जाता है। रंग मटमैला होता है, और दुम के ऊपर पीठ पर कुछ सफ़ेद-से धब्बे रहते हैं। लाल मुनियाँ की अपेक्षा इसका घोंसला कुछ बड़ा होता है, पर कुढंगा

वैसा ही ! काँटों की झुरमुट में और कभी-कभी कुएँ में भी यह अपना घोंसला बनाता है। साल में मात्र दो बार अण्डे देती है। इसका समय है जनवरी से मार्च और जुलाई से सितम्बर। प्रत्येक बार सात-आठ अण्डे देती है। उनका रंग सफ़ेद होता है।

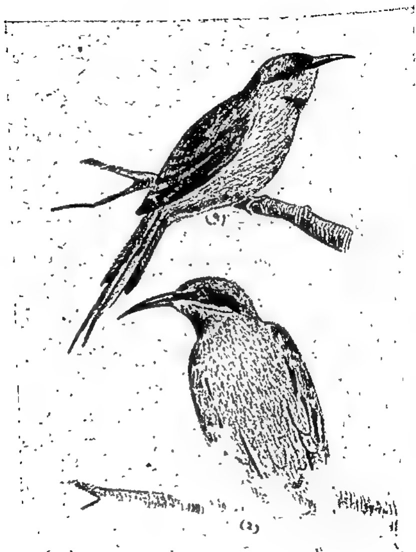
तेलिया मुनियाँ

सब मुनियों में बड़ी तेलिया मुनियाँ है। इसकी लम्बाई प्रायः पाँच इंच होती है। बड़ा ही सुन्दर पक्षी है। ऊपर और नीचे के पर बादामी रंग के और सिर, ठोड़ी तथा गला कत्थई रंग के होते हैं। शरीर पर कुछ सफ़ेद बुँदकियाँ भी होती हैं। घोंसला ज़मीन से कुछ ही ऊपर बनाती है और वह देखने में छोटे फुटबाल-सा लगता है।



पतरिंगा

रेल से सफ़र करते समय बहुत से पक्षी टेलीग्राफ के तार पर बैठे मिलते हैं। जब से नयी सभ्यता का दौरदौरा हुआ है तब से हम लोग बहुत-सी ऐसी चीज़ों का व्यवहार करने लगे हैं जिनकी कल्पना भी हम कुछ बरस पहले न कर सकते थे। पक्षी अभी प्राचीन-पन्थी बने हुए हैं, पर उनके जीवन या रहन-सहन पर भी नयी रोशनी धीरे-धीरे पड़ रही है और कहीं-कहीं उसका प्रभाव नज़र आ रहा है। चश्मे के सुनहले फ्रेम का कौआ अपने घोंसले में उपयोग करने लगा है और किसी-किसी पक्षी के घर की सजावट डाक के टिकटों से होने लगी है। पर जान पड़ता है कि नये साधनों में पक्षियों के लिये जितना उपयोगी तार सिद्ध हो रहा है उतना दूसरा नहीं। तार से समाचार भेजकर नहीं, बल्कि उसपर बैठकर ही,



पतरिंगा

पतरिंगा

—++++—

रेल से सफ़र करते समय बहुत से पक्षी टेलीग्राफ के तार पर बैठे मिलते हैं। जब से नयी सभ्यता का दौरदौरा हुआ है तब से हम लोग बहुत-सी ऐसी चीज़ों का व्यवहार करने लगे हैं जिनकी कल्पना भी हम कुछ बरस पहले न कर सकते थे। पक्षी अभी प्राचीन-पन्थी बने हुए हैं, पर उनके जीवन या रहन-सहन पर भी नयी रोशनी धीरे-धीरे पड़ रही है और कहीं-कहीं उसका प्रभाव नज़र आ रहा है। चश्मे के सुनहले फ्रेम का कौआ अपने घोंसले में उपयोग करने लगा है और किसी-किसी पक्षी के घर की सजावट डाक के टिकटों से होने लगी है। पर जान पड़ता है कि नये साधनों में पक्षियों के लिये जितना उपयोगी तार सिद्ध हो रहा है उतना दूसरा नहीं। तार से समाचार भेजकर नहीं, बल्कि उसपर बैठकर ही पक्षी

अपना काम निकालते हैं। नियमित रूप से उसपर आसन जमानेवालों में भुजङ्गा है, किलकिला है, मछरिया है और है यह पतरिंगा। बहुत ही सुन्दर पक्षी है। आकार में प्रायः गौरैये के बराबर, पर पूँछ बहुत बड़ी; शरीर का रंग विशेषतः हरा, किन्तु ऊपर की ओर कुछ सुनहलापन लिये हुए; ठोड़ी और गाल नोले; गले में काली कण्ठी; चोंच लम्बी, नुकीली और काली; आँखें लाल—यही थोड़े में इसकी पहचान है। इसकी विशेषताओं में मुख्य यह है कि इसकी पूँछ के बीचोबीच दो पर काले, पतले और दूसरों से बहुत आगे निकले हुए होते हैं। जान पड़ता है पूँछ में किसी ने तार के दो लम्बे टुकड़े खोंस दिये हैं। इसकी चोंच की जड़ से आँख तक एक काली धारी कुछ दूर तक जाती है। सुनहले और हरे रंगों का इसके डैनों में कुछ ऐसा मेल है कि उड़ते समय इसका रंग बदलता रहता है, अर्थात् जब सूर्य की किरणें डैनों के ऊपर पड़ती हैं तब तो यह हरा दीखता है और जब वे डैनों के बिचले हिस्सों पर पड़ती हैं, तब यह सुनहला नज़र आता है। यह ढीठ पक्षियों में है, इसलिये आप इसके पास जाकर इसका रंग-ढंग देख सकते हैं। यह उड़ते हुए कीड़ों पतिंगों का शिकार करता है। मधुमक्खियों का यह परम शत्रु है। अंग्रेज़ी में इसका जो नाम है उससे यही सूचित भी होता है। यह नियमित रूप से स्नान करनेवाले पक्षियों में है और इसका ढंग हुदहुद-जैसा है। धूल में बैठकर परों को फड़फड़ा देता है, जिससे उसका तमाम बदनमें प्रवेश हो जाता है और रक्त चूसनेवाले कीड़ों से इसे छुटकारा मिल जाता है।

पतरिंगा अपना घोंसला किसी पेड़ पर नहीं बनाता, या तो किसी चट्टान या टीले में या किसी नदी के कगार में या बाँध में सूराख करके अपना घर बना लेता है। दरिया मैना भी आपको याद होगा कि इसी प्रकार सूराख करके रहती है, पर इतना फ़र्क ज़रूर है कि पतरिंगे के घर में जाने का सूराख बहुत छोटा होता है। इसकी चौड़ाई प्रायः दो इञ्च होती है और घर या घोंसले की प्रायः चार इञ्च। यह गोलाकार होता है।

मार्च या अप्रैल के महीने में अगर आपको इसका ध्यान रहा तो बहुत सम्भव है आप इसे चोंच और पञ्जे से घर तैयार करने के लिये मिट्टी खोदते देख पायँगे। तीन से छः फ़ीट गहरी मिट्टी खोदकर नर और मादा अण्डे देने की जगह तैयार करते हैं। अण्डों की संख्या तीन-चार से छः-सात तक होती है और उनका रङ्ग सफ़ेद होता है। प्रायः जितने पक्षी ऐसे सूराख़ों में रहते हैं, उनके अण्डे सफ़ेद होते हैं। इसका विशेष कारण है। सफ़ेद न हों तो अँधेरे घुप में ये अपने अण्डों को न देख सकें और उनकी जैसी सेवा करनी चाहिए, न कर सकें। अण्डे सेने का अर्थ है उन्हें यथेष्ट गरमी पहुँचाना, और अगर इसमें त्रुटि हुई तो अण्डे निष्फल जायँगे, उनसे बच्चों की उत्पत्ति न हो सकेगी। बच्चे प्रायः माँ-बाप के ही समान होते हैं, पर उनकी पूँछ के बीच में दोनों लम्बे पर नहीं होते।

पतरिंगा सालभर एक ही स्थान में नहीं रहता। जाड़ा कहीं बिताता है, गरमी कहीं। जहाँ यह पक्षी सालभर नज़र आता है वहाँ भी यही बात है, अर्थात् जिसको आज आप देख रहे हैं वह कल

नहीं था और बहुत सम्भव है कि कुछ दिन बाद वह भी कहीं चल देगा। बस आते-जाते रहते हैं। इसकी एक उपजाति है जो एशिया और अफ्रीका से पश्चिमोत्तर प्रदेश में आती है और वहीं अण्डे देती है। दूसरी उपजाति है जो मई-जून में अफ्रीका से आकर पञ्जाब और कश्मीर में घर बनाती है। आम तौर से यह कहा जा सकता है कि इस देश में इनका जाड़ा दक्षिण में बीतता है और गरमी उत्तर में। पञ्जाब और पश्चिमोत्तर प्रदेश से यह सितम्बर में और उत्तर बिहार से यह अक्तूबर में विदा ग्रहण करता है। उड़ते हुए क़ीड़ों को पकड़ने के लिये इसे ऐसी आबोहवा चाहिये जो ख़ुश्क हो। सर्दी और बेहद गरमी दोनों से ही यह बचना चाहता है।

जिस समय यह चोंच में किसी कीड़े को धर दबाता है, उस समय ऐसी आवाज़ होती है जो कई गज़ पर सुनाई देती है। छोटा कीड़ा हुआ तो यह उसे एक ही ग्रास में निगल जाता है, नहीं तो उसके अंग भंग करके खा जाता है।

इसकी सुन्दरता की बात ऊपर कही जा चुकी है। इसकी बोली भी सुहावनी है। पर मनुष्य की दृष्टि से इसमें एक बड़ा दुर्गुण है। यह मधुमक्खियों को चट कर जाता है। पूसा में कई बार यह उनका संहार कर चुका है। पतरिंगों का बस चले तो रोगी या निरोगी किसीको रत्तीभर भी शहद न मिल सके।

शकरखोरा

यह बहुत ही छोटी चिड़िया है, आकार में गौरैये की भी बराबरी नहीं कर सकती, पर इसके रंग-रूप की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। संसार में ऐसे पक्षी कम हैं जो हमारी आँख और कान दोनों के प्यारे हों, पर शकरखोरा उनमें स्थान पाने के सर्वथा योग्य है। नर और मादा का रंग एक नहीं होता; मादा के ऊपर के पर कुछ हरापन लिये हुए मटमैले और नीचे के पर कुछ पीले होते हैं। नर का रंग पीला या बैंगनी होता है। जिस समय वह छाँह में रहता है, उस समय काला-सा दीखता है, पर धूप में कभी हरा, कभी नीला नज़र आता है। दूर से उसका रंग "ब्लू ब्लैक" स्याही-सा दीखता है। सन्तान हो जाने के बाद नर भी बहुत कुछ मादा की भाँति होजाता है,

इसीसे कुछ लोगों का कहना है कि शकरखोरा जब विवाह करने जाता है, तब रंगरूप सँवार लेता है। विवाह हुआ, घोंसला बना, अंडे दिये गये, बच्चों से घर भर गया। अब उस सज-धज की कोई ज़रूरत नहीं रही, इसलिये उसने अपना रंग बदल दिया। उसकी चोंच लम्बी और नुकीली पर कुछ मुड़ी हुई होती है। जीभ की उपमा पतली नली से दी जा सकती है। इसे शकरखोरा इसलिये कहते हैं कि यह फूलों का रस चूसनेवाली चिड़िया है। बंगाल में इसीलिये इसका नाम मधुपायी पड़ा है। भ्रमर की तरह यह भी मधु का चाखनहार है और इ. की चोंच और जीभ इस काम के लिये बहुत उपयुक्त हैं। फूल में अपनी तेज़ चोंच से छेद करके मधुपान करता है। पर मीठी चीज़ ही नहीं खाता; मीठी बोली भी बोलता है। इसका समय जनवरी से अगस्त तक है। इसीलिये ऊपर कहा गया है कि यह जिस तरह हमारी आँखों को भाता है उसी तरह हमारे कानों को भी।

शकरखोरा प्रायः फूलों के पास पाया जाता है। कभी-कभी इसे चूसने के लिये बैठने को जगह नहीं मिलती, इसलिये इसने ऐसा अभ्यास कर लिया है कि उड़ते-उड़ते अपनी तृप्ति कर लेता है। जिस समय सेंमल के वृक्ष में फूल लगते हैं उस समय कुछ पक्षियों का उनके पास महामहोत्सव होता है। अगर आप ध्यान-पूर्वक देखेंगे, तो संभव है उस सम्मेलन में इस पक्षी को भी पावेंगे। इस प्रकार मधुपान करने के कारण कुछ लोग कह सकते हैं कि शकरखोरा लुटेरा है, पर वास्तव में वह जो कुछ लेता है, उसके बदले में कुछ देता भी है। आपको शायद मालूम होगा कि फल की उत्पत्ति, फूल के पराग और

...योग से होती है। शकरखोरा मधुपान करते समय फूल में ऐसी जगह छेद करता है कि उसका कुछ पराग उसकी चोंच में लगजाता है, और जब वह उड़कर दूसरे फूल पर धावा बोलता है तब उस पराग को उस फूल के स्त्री-केशर तक पहुँचा देता है। इस प्रकार फल और बीज की सृष्टि होती है और शकरखोरा उस पौधे के वंश-विस्तार का साधन बन जाता है। पौधों की यह सेवा मधुमक्खियाँ भी करती हैं, पर कुछ जीव ऐसे भी हैं जो फूलों का रस तो ले लेते हैं, पर किसी प्रकार की सेवा या हितसाधन नहीं करते। उदाहरण के लिये हम हड्डे का नाम ले सकते हैं। यह फूल में ऐसी जगह सूराख़ करता है कि मधु तो पाजाता है, पर पराग को छूता तक नहीं। डाका डालनेवालों में इन्हींकी गिनती होनी चाहिए। पर यह समझना भूल है कि शकरखोरा खाली मधुपान करके ही जीता है। उसके आहार में कीड़े-मकोड़े भी शामिल हैं। उनका शिकार कभी तो ज़मीन पर, कभी उड़ते हुए करता है।

भारतवर्ष में इसकी कोई २५ उपजातियाँ मिलती हैं। बिहार प्रान्त में सबसे अधिक बैंगनी रंगवाली उपजाति पाई जाती है। यह प्रायः अकेला रहता है, पर बरसात में कभी-कभी दस-बारह एक ही पेड़ के पास नज़र आते हैं। घोंसला बनाने का समय फ़रवरी से अगस्त तक है। पर बिहार को छोड़कर उत्तर भारत के प्रान्तों में शायद मई से पहले यह घर नहीं बाँधता।

इसका घोंसला किसी डाल या टहनी से लटकता रहता है। उसे देखकर बया के घोंसले की याद होआती है। उसके लिये यह तरह-तरह

के सामान जुटाता है। घास-फूस, पत्ते, लकड़ी, छाल, चिथड़े, काँटे, काग़ज़, कपड़ा—-इनके अलावा किसी-किसी घोंसले में ब्लाटिङ्ग पेपर और स्टाम्प भी मिलते हैं। पहले मादा कुछ मकड़ी का जाला लाकर उसे डाल में लपेट देती है, फिर उसमें कुछ घास-फूस जोड़कर आगे बढ़ती है। घोंसला आकार में मुट्ठी के बराबर होता है, और उसके भीतर कभी-कभी सेमल की रुई का बिछावन भी मिलता है। देखने में सुन्दर लगता है। कभी-कभी यह अपना घोंसला दीवार की कारनिस में बनाता है। घोंसला बनाने या उसके बाद अंडे सेने का काम शायद मादा को करना पड़ता है। नर या तो गाता या फूलों का रस पीता रहता है।

शकरखोरे का घोंसला बहुत ऊँचाई पर नहीं होता। यों तो उसमें साहस की कमी नहीं—मौक़ा पड़ने पर वह बड़े-से-बड़े पक्षी से भिड़ जाने को तैयार रहता है, पर सांप, कौए और गिलहरियाँ उसके अंडों को बहुत नष्ट करती हैं। फिर भी शकरखोरों की संख्या घटती नहीं दीखती। इसका मुख्य कारण यह है कि मादा साल में दो-तीन बार अंडे देती है। उनका रंग दूध-जैसा रहता है और उनपर कुछ बादामी चित्तियाँ होती हैं। प्रत्येक बार मादा दो, कभी-कभी तीन अंडे देती है।

बाबुना

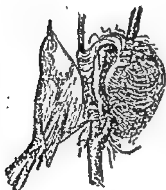
बाबुना झुंड में चलनेवाली छोटी चिड़िया है, जो गले में ज़ोर न होते हुए भी बराबर बोलती रहती है। इस तरह बोलकर ही ऐसी चिड़ियां झुंड में साथ रह सकती हैं। मालूम नहीं कहती क्या हैं? शायद प्रत्येक चिड़िया साथियों से कहती रहती है कि चिन्ता की कोई बात नहीं!

आकार में यह प्रायः मनुष्य की बिचली उंगली के बराबर होती है। इसका रंग कुछ हरापन लिये हुए पीला होता है। सिर, ठोढ़ी, गला, पीठ, कंधे—सभी पीले होते हैं। और आंखों के चारों ओर सफ़ेद परों की धारी-सी होती है, जिस कारण अंगरेज़ी में इसे चश्मा-वाली चिड़िया कहते हैं। पूंछ और डैने बादामी रंग के होते हैं।

पौ फटते ही यह चिड़िया बाग़ में पहुँच जाती है और अपना शिकार शुरू कर देती है। यह पत्तों पर के छोटे-छोटे कीड़ों को ही मुख्यतः खाती है, पर कभी कभी फल-फूलों की ओर भी ध्यान देती है। फल तो क्या छोटी-छोटी कलियों से ज़रूर प्रेम रखती है। आम और अमरूद की फ़सल को इससे कभी-कभी नुक़सान पहुँचता है, पर बहुत कम। फिर इसकी ओर से यह कहा जा सकता है कि हानिकारक कीड़ों का नाश कर यह उन फलों का दाम पाई-पाई चुका देती है।

स्थानानुसार यह जनवरी से सितम्बर तक घरबारी रहता है। पर साधारणतः इसका समय अप्रैल का आरम्भ है। उत्तर बिहार में यह अप्रैल से जुलाई तक अंडे देती है। उस समय मादा बड़ी ही मीठी बोली बोलती है। इनका घोंसला पीलक का-सा होता है और देखने में सुन्दर लगता है। पीलक से इसका रंग भी बहुत कुछ मिलता-जुलता है। उत्तर बिहार में इसका घोंसला प्रायः आम के पेड़ पर मिलता है। घास-फूस, घोड़े की पूंछ या मनुष्य के सिर के बाल, रूई, मकड़ी का जाला इत्यादि जुटा कर यह अपना घर बनाता है। पहले मकड़ी के जाले से दो-चार टहनियों को बाँध देता है, फिर और सामान पहुँचा कर इमारत खड़ी करता है। नर मादा दोनों ही सामान जुटाते हैं। घोंसला ज़मीन से बहुत ऊँचा नहीं होता। आकार-प्रकार में भिन्नता होती है। इसकी चौड़ाई प्रायः ढाई इंच और गहराई एक से दो इंच होती है। भीतर बालों का गद्दा सा रहता है। अंडों की संख्या दो होती है—कभी कभी तीन या चार भी। रंग नीला रहता है।

बच्चों को खिलाने-पिलाने का एक साहब ने मनोरंजक वृत्तान्त लिखा है। कहते हैं कि एक बार कहीं नर ने किसी बच्चे को एक कीड़ा दिया। वह इतना बड़ा था कि बच्चा उसे निगल न सका। मादा यह तमाशा देख रही थी, वह झट उड़ पड़ी और चोंच में पानी भर लाई। बच्चे के मुँह में पानी की बूंद-पर-बूंद देती गई। इससे शायद कीड़ा नरम होगया और बच्चा उसे आसानी से निगल गया।



बया

—++++—

अचरज बंगला एक बनाया ,
ऊपर नींव तले पर छाया ,
बांस न बल्ली बंधन घने—
कह 'खुसरो' घर कैसे बने ?

ढाका की मलमल मशहूर है। उसे बुननेवाले जुलाहे बड़े ही अच्छे कारीगर होंगे। किसी जमाने में यूरोप के धनी समाज में भी इस मलमल की बड़ी खपत थी, और लोग इसकी खूबियां देखकर आश्चर्य करते थे, कि यहां के जुलाहों ने कैसी उँगलियां पाई हैं। पर ऐसे कुछ कारीगर पक्षियों के समाज में भी पाये जाते हैं। वे उँगलियों



बया

पृष्ठ १२०

की जगह अपनी चोंचों से काम लेते हैं, फिर भी बुनने में कमाल कर दिखाते हैं। उनके घोंसलों का ताना-बाना देखकर आप दंग रह और आपके मन से यह धारणा दूर हो जायेगी कि हुनर रीगरी मनुष्य के ही हिस्से पड़ी थी। पक्षियों में भी दर्ज़ी हे हैं और उनकी कला-कुशलता ऐसी है कि साधन-हीन , कितनी ही बातों में, मनुष्य से बाज़ी मार ले जाते हैं।



और अपनी खुशी ज़ाहिर करता है। बुनते-
ाता है और 'तराने' भरने लगता है।
कुछ-कुछ बोतल की शक्ल का होता है। टहनी
इस मज़बूती से बंधा हुआ होता है कि आंधी-
ारने का डर नहीं रहता। भीतर दो हिस्से होते
। या कोठरी जिसमें अण्डे दिये जाते हैं, दूसरा
जो नीचे की ओर खुलता है और जिससे यह
ंसले में प्रवेश करना ज़रा टेढ़ी खीर है, पर
ण बया को कोई कठिनाई नहीं होती। एक तो
ज़ा नीचे है और रहने का कमरा ऊपर। फिर
ला इतना ढीला-ढाला होता है कि अगर कोई
र भी जाये तो कहीं उसके पैर ही नहीं जम
ड़ता हुआ आता है और अपने परों को समेट के
अपने कमरे में पहुँच जाता है। सुरंग की चौड़ाई
लम्बाई छः इञ्च होती है। कभी-कभी ऐसा होता है
ते ही मादा उसमें चली जाती है और अण्डे देकर
नर अकेला बाक़ी हिस्से को पूरा करता है। मादा
अण्डे देती है। कभी-कभी तीन और चार भी।
ता है। बच्चों के निकलने पर उनको बाहर से
लिये ... में कुछ सूराख कर दिये जाते हैं।
... ा का घोंसला बहुत हलका होता
... उसका वज़न भारी

वहाँ पहुँच नहीं सकता। न डाल का सहारा है न टहनी का! ताड़ के पत्तों का जहाँ अन्त होता है वहाँ से वया का घोंसला शुरू होता है। उस पर भी तुर्रा यह कि घोंसले का दरवाज़ा ऊपर न होकर नीचे होता है। कौन दूसरा पक्षी माई का लाल है जो उसके उस विचित्र घोंसले में घुस सके? यही कारण है कि वया किसीकी दृष्टि पड़ने की परवा नहीं करता। गहरी-से-गहरी परिखाओं या खाइयों से घिरा हुआ कोई किला उतना सुरक्षित नहीं है जितना पत्ते के सिरे से लटका हुआ वया का घोंसला।

बरसात आते ही नर और मादा घोंसला बनाने या बुनने के का में हाथ लगा देते हैं। पुराना घोंसला रहा तो उसकी मरम्मत कर रहने लायक बना लेते हैं। नहीं तो नये की तैयारी की जाती है घास-फूस और पत्तों से ही अपना महल उठाते हैं। मोटी या चौ सींकों को पहले चोंच से चीर-चीर कर कई टुकड़े करते हैं। अं उनमें से कुछ को ताड़ के पत्ते या बबूल की पतली टहनी के सिरे जोड़ देते हैं। जोड़ने के लिये जो 'डोर' काम में लाते हैं वह प्र पाँच इंच लम्बी होती है—पर कभी-कभी बारह इंच तक। उसी का नीचे की ओर बढ़ाते-बढ़ाते घोंसले का रूप प्रदान कर देते आरम्भ में नर और मादा दोनों ही सामान जुटाते और बुनने काम करते हैं। फिर कुछ हिस्सा बन जाने पर भीतर का मादा ले लेती है और नर का काम रह जाता है, मसाला जुटाना बाहर से बुनने में सहायता पहुँचाना। यों तो दोनों के ही लि

है। घास-फूस लाता है और अपनी ख़ुशी ज़ाहिर करता है। बुनते-बुनते आवेश में आ जाता है और 'तराने' भरने लगता है।

घोंसला देखने में कुछ-कुछ बोतल की शकल का होता है। टहनी या पत्ते के सिरे से वह इस मज़बूती से बंधा हुआ होता है कि आंधी-तूफ़ान में भी उसके गिरने का डर नहीं रहता। भीतर दो हिस्से होते हैं। एक तो वह कमरा या कोठरी जिसमें अण्डे दिये जाते हैं, दूसरा वह सुरंग या रास्ता जो नीचे की ओर खुलता है और जिससे यह आते-जाते हैं। इस घोंसले में प्रवेश करना ज़रा टेढ़ी खीर है, पर अभ्यास होने के कारण बया को कोई कठिनाई नहीं होती। एक तो यही देखिये कि दरवाज़ा नीचे है और रहने का कमरा ऊपर। फिर दरवाज़े के पास घोंसला इतना ढीला-ढाला होता है कि अगर कोई दुश्मन वहाँ तक पहुँच भी जाये तो कहीं उसके पैर ही नहीं जम सकते। बया ख़ुद उड़ता हुआ आता है और अपने परों को समेट के उसी सुरंग से सीधे अपने कमरे में पहुँच जाता है। सुरंग की चौड़ाई प्रायः दो इञ्च और लम्बाई छः इञ्च होती है। कभी-कभी ऐसा होता है कि कमरा तैयार होते ही मादा उसमें चली जाती है और अण्डे देकर सेने लगती है, इधर नर अकेला बाक़ी हिस्से को पूरा करता है। मादा एक बार प्रायः दो अण्डे देती है। कभी-कभी तीन और चार भी। इनका रंग सफ़ेद होता है। बच्चों के निकलने पर उनको बाहर से भोजन पहुँचाने के लिये उस कमरे में कुछ सूराख़ कर दिये जाते हैं।

आकार में बड़ा होते हुए भी बया का घोंसला बहुत हल्का होता है। इसलिये हवा में प्रायः हिलता-डुलता रहता है। उसका वज़न भारी

से पाला-पोसा जा सकता है। इसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण होती है, इस-लिये इसे तरह-तरह के खेल भी—जैसे हल्की-हल्की चीज़ें किसी स्थान से ले आना, मालिक के मुंह के पास उड़के जाना और उसके ओंठों के बीच से अनाज के दाने निकाल लाना, पानी भरना, खिलौने की बन्दूक़ फ़ायर करना इत्यादि—आसानी से सिखाये जा सकते हैं।

नर और मादा दोनों ही रंग और आकार में गौरैया के समान होते हैं। पर बरसात शुरू होते ही नर का रंग बदल जाता है। छाती, गरदन और सिर तीनों सुनहले हो जाते हैं और ठोड़ी स्याह-सी दीखने लगती है। दाना चुगनेवाली चिड़ियों की तरह बया की चोंच कुछ मोटी होती है। दाने की भूसी अलग करने के लिये इस प्रकार की चोंच विशेष उपयोगी होती होगी।



दर्जी



भारतवर्ष में बादामी या कत्थई रंग के, कुछ छोटे—गौरैये से भी छोटे—पक्षी पाये जाते हैं जिनके अनेक भेद हैं और जिन सबको उत्तर के प्रान्तों में 'फुदकी' कहते हैं। इस देश में फुदकी की कम-से-कम एक सौ उपजातियां हैं। कुछ तो साल भर यहीं रहती हैं, और कुछ गरमी के दिनों में उत्तर एशिया या मध्य एशिया की ओर चली जाती हैं। इन फुदकियों में एक चिड़िया बड़ी विशेषता रखती है। उसे हम दर्जी कह सकते हैं।

दूर से तो यह बादामी रंग की दीखती है, पर पास जाकर आप देखें तो इसका सिर लाल-पीला-सा और इसकी पीठ हरी-सी नज़र आयेगी। इसकी गरदन में एक काली कंठी भी होती है और वह इस

के बोलते समय ही दीख पड़ती है। नीचे के हिस्से सफ़ेद होते हैं और दाम्पत्य के समय, नर की पूंछ के बिचले दोनों पर, और परों की अपेक्षा, बड़े हो जाते हैं। दर्जी चिड़िया दिनभर बोलती रहती है। जेठ-बैशाख की कड़ी धूप में जब कि कौए भी विश्राम करते हैं दर्जी चिड़िया का बोलना बंद नहीं होता। सन्ध्या-समय जब दूसरे पक्षी अपने-अपने घर चले जाते हैं, आप अक्सर देखेंगे कि दर्जी का शिकार जारी है। यह प्रायः कीड़े-मकोड़े ही खाता है। जिस समय उत्तेजित होता है उस समय दुम उठा कर बोलता है।

अच्छा इसका दर्जी नाम क्यों पड़ा ? इसलिये कि यह अपना घोंसला बनाने में दर्जी की-सी कार्य-कुशलता दिखलाता है। अपनी चोंच-रुपी सुई से पत्तों को सीकर जोड़ देता है और उन्हींके संपुट में अपने लिये घर बना लेता है। सीने के लिये कहीं से मकड़ी का जाला, रुई या रेशम ले आता है। कभी-कभी किसी दर्जी की दुकान से तागे के टुकड़े भी उठा ले जाता है। अगर पत्ता बड़ा-सा हुआ तो उसके दोनों छोरों को सटाके सी देता है, नहीं तो दो-तीन पत्तों को, कभी-कभी दस अथवा बारह पत्तों को, उसी तरह आपस में जोड़ देता है। पहले तो पत्ते या पत्तों के किनारे की ओर, चोंच से छोटे-छोटे सूराख़ कर देता है, फिर मकड़ी का जाला और दूसरे सामान जुटा कर ऐसी सिलाई करता है कि पत्तों के छोर या भिन्न-भिन्न पत्ते सम्बद्ध हो जाते हैं। खाली मकड़ी के जाले से मज़बूत सिलाई नहीं हो सकती, इसलिये यह चालाक चिड़िया धागे की जगह काम में लाने के लिये दूसरी चीजें उठा लाती है। जब पत्ते जुट जाते हैं तब उस

थैले के भीतर यह सेमल की रुई या वैसी ही नरम कोई और चीज़ विछा देती है। इसका घोंसला वनाने का समय अप्रैल से अगस्त तक है। किसी घोंसले का मुंह ऊपर, किसी का नीचे और किसी का वगल में होता है। इसका घोंसला आपको आम या अमरूद के पेड़ पर मिलेगा। पर कभी-कभी वैंगन अर्थात् भांटे के पेड़ पर ही मिलता है—ज़मीन से कुल दो फ़ीट ऊंचा! घोंसला वनाने में नर भाग नहीं लेता, इसका सारा श्रेय मादा को है। संभव है नर की पूंछ के दोनों विचले लम्बे पर वाधक हों, पर यह भी संभव हो सकता है कि वह आलस्य या अभिमान के कारण यह काम करना नहीं चाहता।

घोंसला प्रायः तीन इंच गहरा होता है, और दो इंच चौड़ा। अंडे तीन होते हैं, पर कभी-कभी चार भी। उनका रंग सफ़ेद होता है। घोंसला छोड़ने के वाद भी मां-वाप, कुछ दिनों तक, वच्चों की निगरानी करते है।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके है, फुदकियां और भी बहुत सी हैं। पर स्थानाभाव के कारण हम उन सवका परिचय देने में असमर्थ हैं।



अबाबील के अण्डे सफ़ेद तथा उनकी संख्या तीन होती है। अगर आप उन्हें देखना चाहें तो फ़रवरी से अगस्त तक तलाश कर सकते हैं।

ताड़ी अबाबील

ताड़ के पेड़ों पर एक ख़ास तरह की अबाबील के घोंसले मिलते हैं, और उसे इसीलिये ताड़ी अबाबील कहते हैं। इसकी और आदतें तो साधारण अबाबील की-सी होती हैं पर यह घोंसला मकान में न बनाकर ताड़ के पेड़ पर बनाती है। ताड़ के पत्ते में कुछ घास-फूस या परों को अपनी लार से चिपका कर यह घोंसला तैयार करती है। साधारण अबाबील से यह छोटी होती है। इसके पँर भी दूसरी तरह के होते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि अबाबील उड़ने में बहुत तेज़ होती है। इस विषय में शायद ही कोई पक्षी इसकी बराबरी कर सके। कोई-कोई अबाबील घण्टे में सौ मील से भी अधिक जा सकती है। एक बार एक हवाई जहाज़ घण्टे में ६८ मील के हिसाब से उड़ता जा रहा था। ईराक़ में एक जगह उसे कुछ ऐसे अबाबील-पक्षी मिले जो ज़मीन से ६००० फ़ीट की ऊँचाई पर चक्कर काट रहे थे। कई [illegible] ज से आगे बढ़ गये। इसीसे इनके वेग का [illegible] है।

लगाया करती है। अबाबील को आप कभी तार पर बैठे न पायेंगे, पर उसे किसी चीज़ के सहारे लटकते हुए आपने अक्सर देखा होगा।

यह काले रंग की चिड़िया है। इसकी पीठ के नीचे की ओर एक सफ़ेद चौड़ी धारी-सी रहती है। आकार में गौरैये से भी छोटी होती है। पैर बहुत छोटे होते हैं। उड़ने में बड़ी तेज़ है। उड़ते समय इसके डैने बराबर फैले हुए रहते हैं और यह उनके सिरों से हवा काटती जाती है। आप इसे प्रायः झुंड में उड़ते हुए पायेंगे। उड़ते समय यह एक तरह की बोली भी बोलती है।

अबाबील अपना घोंसला किसी मकान, मन्दिर या मस्जिद में बनाती है। वह एक प्याली की शक्ल का होता है और उसे बनाने के लिये यह चिड़िया कुछ घास-फूस, चिड़ियों के पर या पशम जुटाती है। इसकी लार बड़ी लसदार होती है और यह उससे गोंद का काम लेती है। मकान की छत या दीवार से घास-फूस को अपनी लार के ज़रिये चिपका देती है और बात-की-बात में इसका घोंसला तैयार हो जाता है। चीन-देश में एक प्रकार की अबाबील का घोंसला मनुष्य के भोजन में काम आता है। वह भी उसकी लार से ही तैयार होता है। लोग उसे उतार लाते हैं और उसका शोरबा बनाकर जीभ चलाने लगते हैं। अबाबील सालभर अपने घोंसले में रहती है। आपके गाँव में कोई पुरानी इमारत हो तो आप उसमें कुछ अबाबीलों के घोंसले ज़रूर पायेंगे। यह ऐसे पतंगों का शिकार कर पेट पालती है जिन्हें यह हवा में उड़ते हुए आसानी से, अपनी चौड़ी चोंच में, पकड़ सकती है।

अबाबील के अण्डे सफ़ेद तथा उनकी संख्या तीन होती है। अगर आप उन्हें देखना चाहें तो फ़रवरी से अगस्त तक तलाश कर सकते हैं।

ताड़ी अबाबील

ताड़ के पेड़ों पर एक ख़ास तरह की अबाबील के घोंसले मिलते हैं, और उसे इसीलिये ताड़ी अबाबील कहते हैं। इसकी और आदतें तो साधारण अबाबील की-सी होती हैं पर यह घोंसला मकान में न बनाकर ताड़ के पेड़ पर बनाती है। ताड़ के पत्ते में कुछ घास-फूस या परों को अपनी लार से चिपका कर यह घोंसला तैयार करती है। साधारण अबाबील से यह छोटी होती है। इसके पैर भी दूसरी तरह के होते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि अबाबील उड़ने में बहुत तेज़ होती है। इस विषय में शायद ही कोई पक्षी इसकी बराबरी कर सके। कोई-कोई अबाबील घण्टे में सौ मील से भी अधिक जा सकती है। एक बार एक हवाई जहाज़ घण्टे में ६८ मील के हिसाब से उड़ता जा रहा था। ईराक़ में एक जगह उसे कुछ ऐसे अबाबील-पक्षी मिले जो ज़मीन से ६००० फ़ीट की ऊँचाई पर चक्कर काट रहे थे। कई बार ये उस हवाई जहाज़ से आगे बढ़ गये। इसीसे इनके वेग का अनुमान किया जा सकता है।

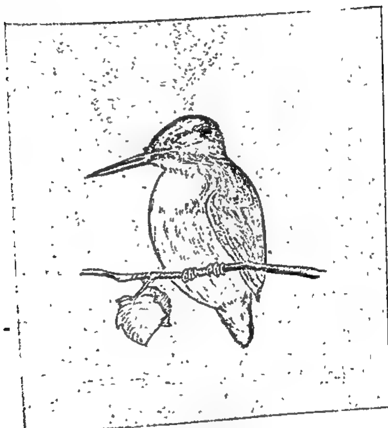
किलकिला

—++++—

मेरे कान सुजान तुन नैन—किलकिला आइ,
हृदय-सिंधु ते मीन-मन तुरत पकरि लैजाइ !

—रसनिधि

शायद ही कोई देश ऐसा होगा जहाँ किलकिला न हो। भारतवर्ष में यह सर्वत्र पाया जाता है, यद्यपि ऊँचे पहाड़ों पर इसके दर्शन नहीं होते। यही हाल बर्मा और सिलोन का है। यह उन पक्षियों में है जो अपना खास व्यक्तित्व रखते हैं। शकल-सूरत देखते ही आदमी कह देगा कि यह जाति का मछुआ है और मछली मारना इसका मुख्य व्यवसाय है।



किलकिला

इसकी चोंच बहुत लंबी होती है, जिससे पानी में मछली पकड़ सके। पैर बहुत छोटे होते हैं। सो भी मज़बूत नहीं। ये न तो ज़मीन पर दौड़ते हैं, न चलते-फिरते हैं—इन्हें मज़बूत पैरों की ज़रूरत ही क्या! इनकी जीभ भी छोटी होती है। पैरों में तीन उंगलियां आगे की ओर और एक पीछे की ओर रहती हैं।

भारतवर्ष में इसकी प्रायः तीन उपजातियां हैं—

साधारण किलकिला

साधारण किलकिला मैना के आकार का होता है। चोंच बहुत बड़ी, जामुनी रंग की, और पैर लाल होते हैं। सिर, गरदन और नीचे के पर बादामी रंग के, गला सफ़ेद, ऊपर के पर नीले, डैनों के पर लाल, काले और सफ़ेद होते हैं। यह साधारणतः कीड़ों का शिकार करता है। पर मछली भी खाता है, यद्यपि उसे पकड़ने से जी चुराता है। इसके घोंसला बनाने का समय मार्च से जुलाई तक है।

छोटा किलकिला

छोटा किलकिला गौरैये के आकार का होता है। इसके सिर पर काली और नीली धारियां रहती हैं। पूंछ, पीठ और डैने नीले, नीचे का हिस्सा कुछ लाल, गाल सफ़ेद, चोंच काली और पैर बिलकुल लाल होते हैं। पानी के किनारे, किसी पेड़ की डाल पर बैठा कभी इधर, कभी उधर देखता है। मछली देखते ही कूद कर गोता लगाता है और उसे चोंच में पकड़े बाहर निकल आता है। यह छोटी-छोटी

मछलियों को पूरा-का-पूरा निगल जाता है। इसके घोंसला बनाने का समय जनवरी से जून तक है।

कौड़ियाला

कौड़ियाला भी मैना के बराबर होता है। इसके पर कुछ सफेद कुछ काले होते हैं। चोंच और पैर बिलकुल काले। इसका आहार केवल मछली है। यह किसी पेड़ की डाल पर बैठकर शिकार की राह नहीं देखता। पानी की सतह से कुछ ऊँचाई पर उड़ता रहता है और मछली देखते ही थोड़ी देर के लिये उड़ना बन्द कर देता है। फिर ऐसे वेग से नीचे आता है कि जान पड़ता है, ज़िन्दा ही न रहा। पर एक ही क्षण बाद मछली को चोंच में दबाये हुए बाहर निकलता है और किनारे जाकर उसे निगल जाता है। इसके घोंसला बनाने का समय जनवरी से अप्रैल तक है।

दरिया मैना की तरह किलकिला जाति के सभी पक्षी, नदियों के किनारे, कगारों में घोंसला बनाते हैं। घोंसला दो भागों में विभक्त होता है—पहले सुरंग-सा रास्ता तैयार करके फिर अंडे देने को जगह तैयार करते हैं। उसमें मछली के कांटे बिखरे रहते हैं और जो दुर्गन्ध आती है उसकी चर्चा न करना ही ठीक है। पक्षियों में कुछ तो अपने घर को बहुत साफ़-सुथरा रखते हैं, पर कुछ इस विषय में इतने उदासीन होते हैं कि मनुष्य के लिये उसके पास खड़ा होना असम्भव है।

उल्लू



सीत हरत, तम हरत नित, भुवन भरत, नहिं चूक;
'रहिमन' तेहि रवि को कहा, जो घटि लखे उलूक ?

सृष्टि में अद्भुत-अद्भुत बातें देखने को मिलती हैं। जिस सुन्दर प्रकाश में बाक़ी प्राणी सब कुछ देखते हैं उसमें उल्लू अंधा बना रहता है। परन्तु जिस अंधकार में औरों की आँखें काम नहीं करतीं उसमें उसे दूर की सूझती है। वह दिन भर कहीं छिपा रहता है और शाम को शिकार करने निकलता है। दुनिया की रात ही उसके लिये दिन है।

उल्लू का सिर बिल्ली की तरह गोल होता है। इसकी और भी विचित्रतायें हैं। प्रायः सभी पक्षियों की आँखें सिर में सामने

की ओर न होकर बगल में होती हैं। उल्लू की आँखें बड़ी औ चमकीली होने के साथ, हमारी-आपकी तरह ठीक सामने होती हैं बात यह है कि वह शिकारी चिड़िया है पर वह स्वयं किसीक शिकार नहीं बनता। बगल में आँखें होने से और पक्षी पीछे क ओर भी देख सकते हैं। उनपर प्रायः दूसरों के आक्रमण हुअ करते हैं, इसलिये उन्हें आगे-पीछे दोनों ओर नज़र रखनी पड़त है। उल्लू को अपने ऊपर आक्रमण की आशंका नहीं रहती, स्वभावत उसके लिये बगल में आँखें होना उतना आवश्यक नहीं है। आपके कानों के स्थान पर यदि आँखें होतीं तो आप भी पीछे की चीज़ों को बखूबी देख सकते। हाँ, सामने जैसी नज़र इस समय रख सकते हैं वैसी तब न रख सकते। उल्लू को अपना शिकार पकड़ने में, सामने आँखें होने से, बड़ी सहूलियत होती है। पर वह पीछे की ओर देख ही नहीं सकता, यह समझना भूल है। वास्तव में वह मनुष्य की तरह अपने सिर को बहुत कुछ इधर-उधर घुमा सकता है।

उल्लू के कान भी बड़े होते हैं—इतने बड़े कि आप आसानी से उनमें उँगली डाल सकते हैं। और पक्षियों की तुलना में इसकी सुनने ... अधिक होती है और इससे भी शिकार पकड़ने में ... मिलती है । इसके पर बहुत ही मुलायम होते हैं ... यह ज़रा भी शब्द नहीं करता। रात में कैसा ही ... परन्तु इसके शिकार को इसकी ज़रा भी आहट नहीं ... एक और विचित्रता यह है कि इसके पैर अंगू... रहते हैं। इसका भी विशेष कारण है।

उल्लू अपने शिकार को पूरा-का-पूरा निगल जाता है। हड्डी या पर जैसी चीज़, जो हज़म नहीं होती, पीछे छोटी-छोटी गोलियों के रूप में निकल जाती है। पर जिस समय उल्लू चूहे जैसे जीव को पकड़ता है उस समय शिकार भी छुटकारा पाने के लिये कुछ उठा नहीं रखता। इसके पैरों को काट खाने की पूरी चेष्टा करता है। अगर उल्लू के पैर परों से ढके हुए न हों तो वह घायल हो जाय और उसे लेने के देने पड़ जायँ।

खेती के लिये उल्लू उपयोगी पक्षी है। किसानों के कितने ही शत्रुओं का नाश कर उनकी भलाई करता है। चूहे जैसे जीव प्रायः रात को किसानों की कमाई पर दाँत साफ़ करने निकलते हैं। उल्लू उनकी संख्या घटाने में सहायक होता है। चूहों के अतिरिक्त वह और जीवों का भी शिकार करता है, जैसे कीड़े-मकोड़े, छिपकलियाँ और चिड़ियों के बच्चे।

भारतवर्ष में उल्लू की प्रायः चालीस जातियाँ मिलती हैं। इनमें सबसे साधारण "खूसटिया" उल्लू है। यह गौरैये से बहुत बड़ा नहीं होता। शोर मचाने में यह बेजोड़ है। इसके ऊपर के पर बादामी होते हैं, जिनपर सफ़ेद दाग-से रहते हैं; नीचे के पर सफ़ेद, जिनपर बादामी धब्बे या धारियाँ होती हैं। आँखें, बड़ी और पीले रंग की होती हैं।

कहा तो यह गया है कि—

होइ उजियार, सूर जस तपै;
खूसट मुख न दिखावै छपै।

परन्तु और उल्लुओं से खूसट को यह विशेषता है कि वह प्रकाश को उतना बुरा नहीं मानता और कभी-कभी दिन-दहाड़े इधर-उधर उड़ता हुआ पाया जाता है।

साधारणतः उसके बाहर निकलने का समय सूर्यास्त के क़रीब है। सारा दिन किसी वृक्ष के कोटर या पुरानी दीवार के सूराख़ में बिताता है। बाहर निकलने का समय होते ही पहले देख लेता है कि दुनियाँ की क्या हालत है ! फिर किसी पेड़ की डाल या ऊँचे खंभे पर जा बैठता है। वहाँ थोड़ी देर तक चुप रहकर अपनी 'कच-कच' 'कुचकुच'—बोली बोलने लगता है। शायद इसीलिये उल्लू को कुचकुचवा भी कहते हैं। बोलता क्या है कभी-कभी सुननेवाले का कान खा जाता है। उस समय अगर वह आपको अपनी ओर टकटकी लगाये देख ले तो पहले तो बड़ी भयंकर सूरत बनाकर आपको घूरेगा, फिर कुचकुच करता हुआ कहीं चल देगा। मानो आपसे रुष्ट होकर, लड़-झगड़कर गया हो।

खूसटिया के अण्डे देने का समय फरवरी से अप्रैल तक है। अधिकांश मार्च में अण्डे देते हैं। इनकी संख्या तीन से पाँच तक होती है। रङ्ग शुरू में गुलाबी रहता है, फिर सफेद रह जाता है। घोंसला या तो किसी पेड़ के खोखले हिस्से में या पुरानी इमारत के सूराख़ में, घास-फूस, सड़ी-गली लकड़ी या चिड़ियों के परों से बनाया जाता है। बच्चे भी माँ-बाप की तरह शोर मचानेवाले होते हैं।

उल्लू और पक्षियों के लिये अजनबी-सा होता है। इसलिये अगर वह कहीं भूल-भटक कर दिन में निकल पड़ता है तो दूसरे पक्षी, ख़ास

कर कौए, उसे बहुत तंग करते हैं। पर खूसटिया के विषय में यह नहीं कहा जा सकता। वह दिन में भी अपनी सुरत दिखाता रहता है। इसलिये वह और उल्लुओं की तरह अपरिचित नहीं होता।

चाँदनी रात में खूसटिया के अतिरिक्त आप दो और छोटे-छोटे उल्लुओं को देख सकते हैं। इनमें एक का नाम 'जंगली चुगद' है और दूसरे का नाम 'चुगद कसियल' पर सभी उल्लू इन तीनों की तरह छोटे नहीं होते। संसार में ४ इंच से २ फ़ीट तक लम्बे उल्लू मिलते हैं। कुछ उल्लू ऐसे होते हैं जिनके सिर पर चोटी होती है। कुछ ऐसे जिनके कान के पास के पर ऊपर को उठे हुए होते हैं। प्रत्येक उल्लू की चोंच टेढ़ी और नुकीली होती है।

अज्ञान की उपमा अन्धकार से दी जाती है। उल्लू को अन्धकार प्यारा है, इसलिये तुलसीदासजी लिखते हैं:—

होहिं उलूक सन्त-निन्दा-रत; मोह-निशा-प्रिय, ज्ञान-भानु मत।

अर्थात् सन्तों की निन्दा करनेवाले उल्लू का जन्म लेते हैं। उन्हें मोह-रूपी रात प्यारी होती है, ज्ञान-रूपी सूर्य नहीं।

उल्लू पूर्व जन्म में क्या थे, यह जानना असम्भव है। पर अगर उनको मालूम हो जाय कि गोस्वामीजी ने उनके विषय में क्या लिखा है तो हम समझते हैं कि वे इसका प्रतिवाद किये बिना न रहेंगे।

एक दूसरे साहब फ़रमा गये हैं कि:—

क़द्रदानों की तबीअत का अजब रंग है आज।
बुलबुलों को है यह हसरत कि वह उल्लू न हुए॥

पर वास्तव में उल्लू के क़द्रदां पहले भी होते थे। यूनान में वह सरस्वती का वाहन समझा जाता था। हम देख चुके हैं कि उल्लू किसानों की भलाई करता है। यह गुण बुलबुल में भी है। इसलिये हम तो यही कहेंगे कि बुलबुल के साथ उल्लू की भी औलाद बढ़े।



चील

—+++—

दिरमो-दाम अपने पास कहाँ ?
चील के घोंसले में मास कहाँ ?

—ग़ालिब

बचै न बड़ी सबीलहूं 'चील्ह' घोंसुवा मांस ।

—बिहारी

चील-झपट्टा मशहूर है। बाज़ार में या रेलवे स्टेशन पर, खाने की कुछ चीज़ें ले जाते समय आपको उसका अनुभव ज़रूर हुआ होगा । यों तो यह मांस को छोड़ और किसी चीज़ को पसन्द नहीं करती, पर इस तरह झपटना इसका स्वभाव-सा है। पूरी-कचौरी को अक्सर

मनुष्य के हाथ से झपट कर ले जाती है, और फिर कहीं गिरा देती है। देखा नहीं पर सुना है कि कभी-कभी सुनार के हाथ से यह ज़ेवर भी झपट्टा मार कर ले जाती है। जहाँ मांस-मछली की दूकान होती है वहाँ चीलें बहुत मंडराती—और लूट-खसोट कर पराया माल अपना करती—रहती हैं।

चील प्रायः सभी गरम मुल्कों में पाई जाती है। आसमान में बहुत ऊँचाई पर, प्रायः बिना पर हिलाये, चक्कर लगाया करती है। यह बहुत तेज़ उड़नेवाली चिड़िया है। इसका रंग खैरा या कत्थई होता है, परन्तु पैर पीले होते हैं। चोंच की ऊपरवाली हड्डी कुछ बड़ी, नुकीली और मुड़ी हुई होती है। उसकी बनावट ऐसी होती है कि मांस को आसानी से चीर-फाड़ सके।

चील एक नंबर की चालाक चोर और डाकू है। कभी-कभी मुर्गी के छोटे बच्चों को भी ले जाती है। साधारणतः यह कीड़े-मकोड़े, मांस-मछली के टुकड़े, गिरगिट, चूहे इत्यादि खाती है। इसके देखने की शक्ति आश्चर्य्यजनक है। खेत या मैदान में कोई चूहा निकला या मरा पड़ा हो तो यह उसे तीन-चार हज़ार फ़ीट ऊपर से देख सकती है। चील अपने शिकार को चोंच से नहीं, चंगुल से पकड़ती है, और फिर किसी पेड़ पर लेजाकर चीर-फाड़ कर खा जाती है। आपने देखा होगा, चील अपने चंगुल में कुछ दबाये जा रही है और कौए उसका पीछा कर रहे हैं। अक्सर ये उसके चंगुल से शिकार छीन-झपट लेते हैं। अगर उसकी आदत चोंच से पकड़ने की होती तो कौओं को यह साहस न होता।

चील के उड़ने का ढंग निराला है। यह अपने डैनों को, और बहुत-सी चिड़ियों की तरह, हिलाती-डुलाती नहीं। उन्हें फैला कर प्रायः स्थिर रखती है और हवा के सहारे आगे बढ़ती जाती है। उड़ते समय सिर घुमा कर कभी इधर कभी उधर देखती है। जहां खाने लायक़ किसी चीज़ पर नज़र पड़ी, छलांग मारती हुई उसपर टूट पड़ती है और उसे पंजों से पकड़ कर नौ दो ग्यारह हो जाती है।

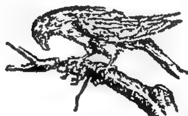
चील के खाने की चीज़ें कौए के आहार में शामिल हैं। इस लिये इन दोनों में दोस्ती नहीं हो सकती। कौए बीच-बीच में इन्हें खूब तंग करते हैं। एक चील के आगे हो लेता है, एक पीछे। पीछे वाला चील की पूँछ को चोंच से ठुकराता है। जब वह इसकी खबर लेने के लिये मुड़ती है तब आगे वाला कौआ भी वही काम करता है। इस तरह कुछ दूर तक वे इसे खूब ठुकराते जाते हैं। घोंसला बनाने के दिनों में कौओं की यह हरकत ज़्यादा देखने में आती है।

चील के घर बसाने का समय जनवरी-फ़रवरी के लगभग है। यह बहुत ऊँचे वृक्ष पर, डाल-पात जुटा कर अपना बेढंगा घोंसला तैयार करती है। अंडे प्रायः दो देती है जो देखने में सुन्दर होते हैं। बच्चों को उड़ना कुछ देर से आता है, पर मसल वही होती है कि देर आयद दुरुस्त आयद। चील अपने बच्चों को खिलाने के लिये दूसरी चिड़ियों के बच्चे चुरा लाती है। यों तो चील की बोली ची-ची या ची-ही-ची-ही जैसी होती है पर बच्चों के मुँह से खाली 'म्यु-म्यु' निकलता है।

गीध या उकाव से चील की पहचान यह है कि इसकी पूंछ के किनारों के पर, बिचले परों से, बड़े होते हैं, इसलिये वह दुसाखा-सी जान पड़ती है।

शंकर चील

साधारण चील के अलावा एक और चील होती है जिसे शंकर चील, धोबिया चील या 'रुह मुबारक' कहते हैं। बंगाल में इसका नाम शंख चील है। इसके सिर और कंधे सफ़ेद होते हैं और डैने खैरे रंग के। यह देखने में सुन्दर लगती है। यह भी मांसाहारी है पर यह खास तौर से मछलियों का शिकार करती है। इसका घोंसला प्रायः किसी झील या तालाब के किनारे, बड़े पेड़ पर मिलता है।



हैं और उनकी बदौलत यह बिना विश्राम किये घंटों आसमान में चक्कर लगा सकता है। उड़ते समय यह अपनी तेज़ नज़र से नीचे चारों ओर देखता रहता है। गीध प्रायः एक दूसरे को देखा-देखी नीचे उतरते हैं। थोड़ी ही देर में मरे हुए या मौत के पास पहुँचे हुए जानवर के पास गीधों का जमघट लग जाता है और वे अपनी मज़बूत चोंच से उसे चीर-फाड़ कर खाने लगते हैं। गीध इस 'महामहोत्सव' में इतना खा लेते हैं कि दो-चार दिन तक और कुछ खाने का नाम नहीं लेते। भारी-भरकम हो जाने से उड़ने में असमर्थ हो जाते हैं और किसी सूखे पेड़ की डाल पर चुपचाप बैठ पेट की चीज़ को पचाते रहते हैं। फिर जब भूख लगती है तब आसमान में चक्कर लगाते और गिज़ा तलाश करने निकलते हैं।

गीधों में सबसे बड़ा राजगीध होता है। इसकी लम्बाई प्रायः एक गज़ होती है। कुत्ते के कान की तरह गरदन के दोनों ओर चमड़ा लटकता रहता है। छाती और कंधे के पर कुछ सफ़ेद होते हैं, बाकी सारे पर काले। सफ़ेद गीध नाम का एक छोटा गीध भी पाया जाता है। यह प्रायः मल-मूत्र ही खाता है। इसलिये अंगरेज़ी में इसे मेहतर कहते हैं। इसकी पहचान यह है कि सिर, गरदन और चोंच का रंग पीला और पर कुछ मैली लिये हुए सफ़ेद होते हैं। बच्चे शुरू में काले रहते हैं पर एक बरस बाद सफ़ेद हो जाते हैं।

गीध के घर बनाने का समय जाड़ा है। बहुत ऊंचे वृक्ष पर टहनियों से बड़ा-सा घोंसला बनाके उसी में मादा एक या दो अंडे देती है। राजगीध या साधारण गीध के घोंसले में आप एक ही अंडा

हमारा जो उपकार होता है उसे हमें नहीं भूलना चाहिये और उन्हें एक क्षण के लिये भी घृणा या तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखना चाहिये। अब गीध की बात लीजिये। इतने जीव रोज़ मरते हैं। कोई-कोई भले ही कहीं गाड़ दिये जायें, पर अधिकांश यों ही खुली हवा में फेंक दिये जाते या पड़े रहते हैं। मुर्दे का शरीर बड़ी तेज़ी से सड़ने-गलने लगता है और अगर उसको हज़म कर जानेवाले गीध न हों तो हवा इतनी गन्दी हो जाये कि नित नयी बीमारी पैदा हो और हम लोगों के लिये एक बड़ी ही भयंकर समस्या खड़ी हो जाय। संसार की सफ़ाई करनेवालों में गीध ऊँचा आसन पाने योग्य है। जब कभी हम उन्हें मुर्दार खाते देखें तो यह याद रखें कि वे हमारी भलाई कर रहे हैं।

गीधों के वंश में जटायु नाम के अमर शहीद हो गये हैं। इनकी कथा आपको रामायण में मिलेगी। दुष्ट रावण के हाथों से सती साध्वी सीता का परित्राण करने के प्रयत्न में इन्होंने अपने प्राण भी गवां दिये। इन्हींके उपकार को स्मरण कर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा थाः—

पर-हित बस जिनके मन माहीं ।
तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ।

गीध की गरदन बे-पर की होती है। इसका कारण 'हुदहुद' के प्रकरण में बताया जा चुका है। कहते हैं कि यह सुलेमान नामक सिद्ध पुरुष के अभिशाप का फल है। गीध के डैने बहुत मज़बूत होते

हैं और उनकी बदौलत यह बिना विश्राम किये घंटों आसमान में चक्कर लगा सकता है। उड़ते समय यह अपनी तेज़ नज़र से नीचे चारों ओर देखता रहता है। गीध प्रायः एक दूसरे की देखा-देखी नीचे उतरते हैं। थोड़ी ही देर में मरे हुए या मौत के पास पहुँचे हुए जानवर के पास गीधों का जमघट लग जाता है और वे अपनी मज़बूत चोंच से उसे चीर-फाड़ कर खाने लगते हैं। गीध इस 'महामहोत्सव' में इतना खा लेते हैं कि दो-चार दिन तक और कुछ खाने का नाम नहीं लेते। भारी-भरकम हो जाने से उड़ने में असमर्थ हो जाते हैं और किसी सूखे पेड़ की डाल पर चुपचाप बैठ पेट की चीज़ को पचाते रहते हैं। फिर जब भूख लगती है तब आसमान में चक्कर लगाते और गिज़ा तलाश करने निकलते हैं।

गीधों में सबसे बड़ा राजगीध होता है। इसकी लम्बाई प्रायः एक गज़ होती है। कुत्ते के कान की तरह गरदन के दोनों ओर चमड़ा लटकता रहता है। छाती और कंधे के पर कुछ सफ़ेद होते हैं, बाकी सारे पर काले। सफ़ेद गीध नाम का एक छोटा गीध भी पाया जाता है। यह प्रायः मल-मूत्र ही खाता है। इसलिये अंगरेज़ी में इसे मेहतर कहते हैं। इसकी पहचान यह है कि सिर, गरदन और चोंच का रंग पीला और पर कुछ मैली लिये हुए सफ़ेद होते हैं। बच्चे शुरू में काले रहते हैं पर एक बरस बाद सफ़ेद हो जाते हैं।

गीध के घर बनाने का समय जाड़ा है। बहुत ऊंचे वृक्ष पर टहनियों से बड़ा-सा घोंसला बनाके उसी में मादा एक या दो अंडे देती है। राजगीध या साधारण गीध के घोंसले में आप एक ही अंडा

पायेंगे, जिसका रंग सफ़ेद होगा। सफ़ेद गीध के साधारणतः दो अंडे होते हैं और उनपर लाल बुंदकियां रहती हैं। घोंसला बनाते समय गीध का मिजाज कुछ गरम रहता है। उसके अंडों को कोई नष्ट नहीं करता, इसीलिये उनकी संख्या भी केवल एक या दो ही होती है। जिन पक्षियों की अधिक हानि होती है उन्हींको अधिक अंडे देने की ज़रूरत भी पड़ती है।

मुर्दार खाने की वजह गीध की देह से दुर्गंध बहुत आती है। पर इसका कोई इलाज नहीं है। गीध के स्नान करने का ढंग निराला है। वह न तो पानी में डुबकी लगाता है, न धूल में लोटपोट करता है। बस कहीं धूप में बैठ कर डैनों को फैला देता है और इस प्रकार सूर्य का सेवन करके ही अपनी सफ़ाई कर लेता है।



बाज़

डूबा हुआ है सर को गरेबां में डाल के,
उड़ता मगर है खोले हुए पर सम्हाल के।
जिस तरह 'बाज़' लावे कबूतर को मार कर,
यों लाता आसमां से है मज़मूं उतार कर॥

—आज़ाद

नीची पै नीची निपट, दीठि कुही लौं दौरि!
उठि ऊँचे नीचे दियौ मन-कुलंग झकझोरि!

—बिहारीलाल

बाज़ उन पक्षियों में है जो दूसरों का शिकार करते हैं और उन्हें खा जाते हैं। इसीलिये उसे शिकारी चिड़िया कहते हैं। बहुत पुराने [illegible] से इस देश में कुछ लोग अपने मनोरंजन के लिये बाज़

पायेंगे, जिसका रंग सफ़ेद होगा। सफ़ेद गीध के साधारणतः दो अंडे होते है और उनपर लाल बुंदकियां रहती हैं। घोंसला बनाते समय गीध का मिजाज कुछ गरम रहता है। उसके अंडों को कोई नष्ट नहीं करता, इसीलिये उनकी संख्या भी केवल एक या दो ही होती है। जिन पक्षियों की अधिक हानि होती है उन्हींको अधिक अंडे देने की ज़रूरत भी पड़ती है।

मुर्दार खाने की वजह गीध की देह से दुर्गंध बहुत आती है। पर इसका कोई इलाज नहीं है। गीध के स्नान करने का ढंग निराला है। वह न तो पानी में डुबकी लगाता है, न धूल में लोटपोट करता है। बस कहीं धूप में बैठ कर डैनों को फैला देता है और इस प्रकार सूर्य का सेवन करके ही अपनी सफ़ाई कर लेता है।



इनके पीछे पड़ जाते हैं। पर कौओं को पकड़ लेना आसान बात नहीं है, इसलिये कुछ ही दूर तक पीछा कर लौट आते हैं और फिर अपने काम में जुट जाते हैं। दो ही एक मिनट बाद देखते हैं कि बदमाशों का गुट फिर आ पहुँचा और छेड़खानी करने लगा। गोरी और गज़नी की जितनी चढ़ाइयां भारतवर्ष पर नहीं हुई उतनी इन कौओं की ऐसे वृक्षों पर होती हैं।

अंडों की संख्या प्रायः चार होती है और उनका रंग सफ़ेद। शिकरा साल भर में इसी देश में रहता है। अकबर बादशाह ने ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि मादा ।।) से डेढ़ अशर्फ़ी को बिकती थी और नर ।) से एक अशर्फ़ी को। शिकारी चिड़ियों में मादा नर से कहीं तेज़ होती है। इसीलिये उसका दाम ज़्यादा होता है। जैसा काम वैसा दाम — इसलिये कोई तो सोलह पैसे को और कोई १६) रु० को।

कहावत है कि 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात !' शिकरा बचपन से ही अपना अद्भुत साहस दिखाने लगता है। दूसरे पक्षी अगर घोंसले के पास आजाएँ तो यह उस अवस्था में भी उनपर चोट किये बिना न रहे !





यह छोटी-छोटी चिड़ियों का शिकार करता है। फ़ाख़ता या मैना पर चोट करते हुए आपने इसे अक्सर देखा होगा। पर गिरगिट, चूहे और छोटे-मोटे कीड़े-पतंगे भी इसके आहार में शामिल हैं, इसलिये उनपर भी इसके आक्रमण होते रहते हैं। जिन लोगों को शिकार के लिये ऐसे पक्षी पालने का शौक है वे शिकरा ज़रूर रखते हैं। इसका कारण यह है कि इसको इस काम की तालीम आसानी से दी जा सकती है। जो चाहे इसे चिड़ियों का शिकार कर उन्हें पकड़ लाना सिखा सकता है। शौकीन लोग इसे विशेषतः तीतर और बटेर पकड़ लाने के लिये पालते हैं।

इसके शिकार करने का ढंग निराला है। जिस पक्षी को पकड़ने चलता है उसका पीछा नहीं करता। अगर वह भाग चला या कतरा कर निकल गया तो यह लौटकर अपनी जगह आ जाता है।

इसके घोंसले बनाने का समय अप्रैल से जून तक है। ऊँचे वृक्ष पर कुछ टहनियों को जुटा कर यह अपना घोंसला तैयार करता है। इस प्रकार के पक्षियों के घोंसले बड़े ही कुढंगे होते हैं, सौन्दर्य की दृष्टि से अत्यंत निराशाजनक। शिकरा, चील और दूसरी शिकारी चिड़ियों को, घोंसला बनाते समय कौए बहुत तंग करते हैं। इससे जो काम हफ़्ते भर में हो सकता था, उसमें कभी-कभी तीन हफ़्ते लग जाते हैं। जिस वृक्ष पर शिकरा घोंसला बनानेवाला होगा उस पर तीन-चार कौए जा बैठेंगे और कांव-कांव शुरू कर देंगे। इनका बोलना क्या है घोंसला बनानेवालों को चिढ़ाना है। पर शिकारी पक्षी भी इसे कब बर्दाश्त करनेवाले हैं? अपमान का बदला लेने के लिये

इनके पीछे पड़ जाते हैं। पर कौओं को पकड़ लेना आसान बात नहीं है, इसलिये कुछ ही दूर तक पीछा कर लौट आते हैं और फिर अपने काम में जुट जाते हैं। दो ही एक मिनट बाद देखते हैं कि बदमाशों का गुट फिर आ पहुँचा और छेड़खानी करने लगा। गोरी और गज़नी की जितनी चढ़ाइयाँ भारतवर्ष पर नहीं हुईं उतनी इन कौओं की ऐसे वृक्षों पर होती हैं।

अंडों की संख्या प्रायः चार होती है और उनका रंग सफ़ेद। शिकरा साल भर में इसी देश में रहता है। अकबर बादशाह ने ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि मादा ।।) से डेढ़ अशर्फ़ी को बिकती थी और नर ।) से एक अशर्फ़ी को। शिकारी चिड़ियों में मादा नर से कहीं तेज़ होती है। इसीलिये उसका दाम ज़्यादा होता है। जैसा काम वैसा दाम — इसलिये कोई तो सोलह पैसे को और कोई १६) रु० को।

कहावत है कि 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात!' शिकरा बचपन से ही अपना अद्भुत साहस दिखाने लगता है। दूसरे पक्षी अगर घोंसले के पास आजाएँ तो यह उस अवस्था में भी इनपर चोट किये बिना न रहे!



लहटोरा

अँगरेज़ी में इसका नाम बहुत बुरा है। इसे कसाई-चिड़िया कहते हैं। अपने आहार के लिये यह झींगुर, टिड्डी, छिपकली और —ी छोटी-छोटी चिड़ियों का शिकार करता है। टेलीग्राफ़ के : बबूल की डाल पर यह बैठा रहता है और किसी कीड़े या को देखते ही उसपर टूट पड़ता है और उसे ले उड़ता है। अगर हुआ तो यों ही चीर-फाड़कर खा जाता है, नहीं तो किसी पेड़ काँटे में उसे फंसा कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालता है। क्या तरह काँटे की सहायता से चीरने के कारण ही यह कसाई कहा जाता है? बहुत संभव है, ऐसा ही हो। ग्रेट ब्रिटन और अमेरिका में — जाति के जो पक्षी मिलते हैं उनके विषय में कहा जाता है कि वे

अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं की ही पूर्ति नहीं करते, आनेवाले दिनों के लिये भी कुछ जमा करते जाते हैं। घोंसले के पास ही कहीं कांटेदार झाड़ी में उनका भोजन-भंडार रहता है। पर जिस ढंग से वे अपने लिये आहार-संचय करते हैं उसे देखते हुए इस स्थान को बूचड़-खाना या क़साई-बाड़ा ही कहा जा सकता है। वहाँ आपको सैकड़ों-हज़ारों कीड़े-मकोड़े और छोटी-छोटी चिड़ियों के बच्चे, तेज़-से-तेज़ कांटे में—माला की मनियों की तरह—पिरोये हुए मिलेंगे। कहते हैं कि इतने अधिक जीवों का यह इस तरह संहार किया करता है कि उनमें से कितने ही रोज़ सड़-गल जाते हैं और इसके खाने के भी काम नहीं आते!

आकार में यह बुलबुल से कुछ छोटा होता है। इसकी आदत सीधे डटकर बैठने की होती है। उस समय इसकी लम्बी-सी पूँछ नीचे लटकती रहती है। चोंच से आँख होकर गरदन के ऊपर तक इसके एक चौड़ी काली धारी होती है। यह धारी प्रायः प्रत्येक उप-जाति में पाई जाती है। लहतोरा बबूल के पेड़ पर बैठना और घोंसला बनाना ज्यादा पसन्द करता है।

उत्तर भारत में इसकी तीन उपजातियाँ मिलती हैं। एक तो सफ़ेद या दुधिया लहतोरा है। यह औरों की अपेक्षा बड़ा होता है। यों तो इसका रंग भूरा-सा है, पर इसके नीचे के हिस्से और डैनों के बहुत से पर सफ़ेद होने के कारण, यह उड़ते समय सफ़ेद-सा दीखता है। इसे सफ़ेद लहतोरा कहते हैं। दुम और डैनों में कुछ काले होते हैं। यह मैना के बराबर होता है।

दूसरी उपजाति का नाम पचनक है। यह बुलबुल से कुछ बड़ा होता है। रंग इसका प्रायः सफ़ेद या दुधिया लहतोरा का-सा होता है। पर इसकी पीठ कत्थई रंग की होती है।

तीसरी उपजाति को मटिया या कजला लहतोरा कहते हैं। इसकी पीठ भी कत्थई रंग की होती है, पर इसकी पूंछ में सफ़ेद पर नहीं होते। तीनों उपजातियों की चोंच बड़ी मज़बूत होती है।

गरमी के दिनों में यह पक्षी घोंसला बनाता है। उसके लिये यह घास-फूस, चिथड़े और टहनियों को जुटाता है और प्रायः पेड़ के धड़ के पास अपना बेढंगा घोंसला तैयार करता है। अंडों की संख्या तीन या चार होती है। उनकी 'ज़मीन' तो सफ़ेद होती है पर उनपर बादामी और बैंगनी रंग की बहुत-सी बुंदकियाँ होती हैं। चौड़े मुँह के पास ज़्यादा चित्तियाँ पाई जाती हैं और कभी-कभी वे गोलाकार होती हैं। अगर आप लहतोरा के अंडे देखने की चेष्टा करें तो बहुत सम्भव है कि इस पक्षी को किसी प्रकार की आपत्ति न होगी, यह आपको देखते ही हट जायेगा। पर अगर बच्चे हुए तो वह जल्दी हटने का नाम न लेगा और सम्भवतः आपके कार्य में बाधा भी डालेगा। उस समय यह इतना निडर हो जाता है कि मनुष्य के पास खड़ा रहने पर भी अपने बच्चों को खिलाता है, किसीकी ज़रा भी परवा नहीं करता!

महलाठ



यों तो यह पक्षी इसी नाम से प्रसिद्ध है, पर संभव है आपके नगर या गाँव में इसे और ही कुछ कहते हों। अवध में इसे मुटरी, बिहार में कोकैया, सिन्ध में महताव और बंगाल में हांडिचांचा या टाकाचोर कहते हैं। प्रायः डेढ़ फ़ीट लम्बी चिड़िया है जिसमें एक फ़ुट को केवल पूँछ ही होती है। नर और मादा एक-से ही दीखते हैं। सिर, गरदन और छाती का रंग कुछ बादामीपन लिये हुए काला होता है। बाकी शरीर खैरा या कत्थई। दुम और डैने कुछ स्याही लिये हुए सफ़ेद होते हैं। दुम के बीच के दो पर सबसे बड़े और दोनों किनारों के दो पर सबसे छोटे होते हैं। चोंच काली होती है।

भारतवर्ष में इसकी दो मुख्य उपजातियाँ हैं। एक तो दक्षिण भारत, उड़ीसा और सिन्ध के अलावा अफ़ग़ानिस्तान से गढ़वाल तक

पाई जाती है। दूसरी—गढ़वाल से आसाम तक। संयुक्तप्रान्त और विहार में दूसरी उपजाति ही मिलती है। प्रायः सभी वातों में दोनों समान होती हैं। पर पहली का रंग उतना गाढ़ा नहीं होता जितना दूसरी का।

महलाठ साहसी पक्षी है। काफ़ी होशियार भी है। प्रायः पेड़ पर ही रहता है। और वहीं इसे कीड़े-मकोड़े मिल जाते हैं। कभी-कभी उड़ते हुए शिकार करता है और ज़रूरत पड़ने पर नीचे भी उतर आता है। ज़मीन पर यह कुछ तृणों के बीज खाता है, साथ ही छिपकलियों की भी संख्या घटाता है। कभी-कभी ज़िन्दा साँप भी चोंच में पकड़ कर कलेवा करने के लिये कहीं ले जाता है।

जव फलाहार की इच्छा होती है तव लुकाट, केले या आड़ू पर भी टूट पड़ता है और बड़े खेद की बात यह है कि उनकी छोटी-छोटी डालियों या टहनियों को अपनी हरकतों से तोड़ डालता है। इसकी गिनती उन पक्षियों में की जाती है जो चोर-लुटेरे हैं। दूसरी चिड़ियों के अण्डे-बच्चे चुराने में सिद्धहस्त है। खासकर फ़ाखता के कितने ही बच्चे हर साल इसका मुखग्रास बनते हैं। मकोड़ों को यह बड़े चाव से खाता है और मिलजाने पर चमगादड़ को भी नहीं छोड़ता। शोर मचाने में यह भी एक नम्बर है। जहाँ ज़रा भी उत्तेजित हुआ कि ज़ोर-शोर से बोलने लगा। जब खुश रहता है तब मीठे बोल भी बोलता है। यों तो इसकी कई बोलियाँ हैं, पर विशेषकर 'कोक-ली' 'कोक-ली' करता रहता है।

महलाठ के घोंसला बनाने का और अण्डे-बच्चे होने का समय

फरवरी से जुलाई तक है—दक्षिण में फरवरी से मार्च और उत्तर में मई से जुलाई तक। यह घोंसला किसी ऊँचे पेड़ की फुनगी के पास बनाता है और उस समय बहुत ज्यादा शोर करता है। महलाठ के घोंसले अधिकतर आम के पेड़ों पर मिलते हैं, पर नीम, पीपल, बबूल, शीशम इत्यादि पर भी पाये जाते हैं। दूसरे पक्षी उसी पेड़ पर या उसके आस-पास घोंसला बनाने का आयोजन करें तो इसे बहुत बुरा लगता है। इसका अपना घोंसला घने पत्तों से छिपा रहता है। उसकी चौड़ाई प्रायः सात इंच होती है। जिस घर में अण्डे रहते हैं उसका मुँह प्रायः पाँच इंच चौड़ा और उसकी गहराई तीन-चार इंच होती है। घोंसला टहनियों और घास-फूस से बनता है पर होता है बड़ा बेढंगा! उसे बनाने का काम नर और मादा दोनों ही करते हैं। मादा प्रायः चार अण्डे देती है। कभी-कभी इनकी संख्या छः तक पहुँच जाती है। सुनते हैं दक्षिण भारत में इसके अण्डे दो-ही-तीन होते हैं। इसके अंडों की दूसरी विचित्रता यह है कि रंग-बिरंग के होते हैं। कहीं सफ़ेद, कहीं भूरे, कहीं हलके पीले, कहीं गुलाबी और कहीं हरे! उनपर प्रायः लाल, पर कभी-कभी हरे, बादामी या बैंगनी रंग की—बुँदकियाँ भी होती हैं। मालूम नहीं क्यों इसके अण्डों के रंग में इतनी विभिन्नता पाई जाती है। कुछ लोगों का खयाल है कि मादा की उम्र के हिसाब से रंग बदलता है, पर बात ऐसी नहीं है। उत्तर बिहार में इसके अण्डों का रंग प्रायः हरा होता है, और संयुक्त प्रान्त में नारंगी। बहुत सम्भव है आबोहवा का उनके रंग पर प्रभाव पड़ता हो। अण्डे सेने में भी नर-मादा सहयोग करते हैं। बच्चों का रंग माँ-बाप

तक कुछ चौड़ी सफ़ेद धारी; डैनों के थोड़े से पर और पूंछ का सिरा भी सफ़ेद।

बड़ी ही चंचल चिड़िया है, कभी स्थिर रहना नहीं चाहती। जब शिकार से फ़ुरसत मिलती है तब पेड़ की डालों पर फुदकती फिरती है। इसकी आदत है कि जहां कहीं जा बैठी वहीं अपनी पूंछ के परों को इस तरह फैला दिया कि वह किसी पंखे-सी दीखने लगी और ख़ुद नाचने लगी। नाचती ही नहीं, गाती भी है। पक्षियों में मनुष्यों की ही तरह कुछ तो बहुत ही चुलबुले होते हैं और कुछ इतने गंभीर कि मनहूस-से मालूम पड़ते हैं। मछरिया इस सिद्धान्त को मानने-वाली है कि ज़िन्दगी ज़िन्दादिली का नाम है—इसलिए यह मुर्दादिल होकर जीना पसन्द नहीं करती। अंगरेज़ी में इसका नाम कुछ लम्बा-चौड़ा है। उससे दो बातें सूचित होती हैं। एक तो यह कि इसकी भौं सफ़ेद होती हैं, और दूसरी यह कि इसकी पूंछ पंखे के आकार की होती है।

यह अप्रैल के लगभग अपना घोंसला बनाती है। आप उसे प्रायः किसी आम या अमरूद के पेड़ पर पायेंगे, ज़मीन से कुछ ही ऊँचाई पर। उसकी शकल प्याले की-सी होती है। घास-फूस में मकड़ी का जाला लपेट कर यह उसे तैयार करती है। जाला प्रायः इतना अधिक होता है कि घास-फूस नज़र ही नहीं आता। मादा तीन अंडे देती है। उनका रंग दूध का-सा होता है और उनके चौड़े मुँह के पास बादामी रंग की कुछ बुंदकियां होती हैं।

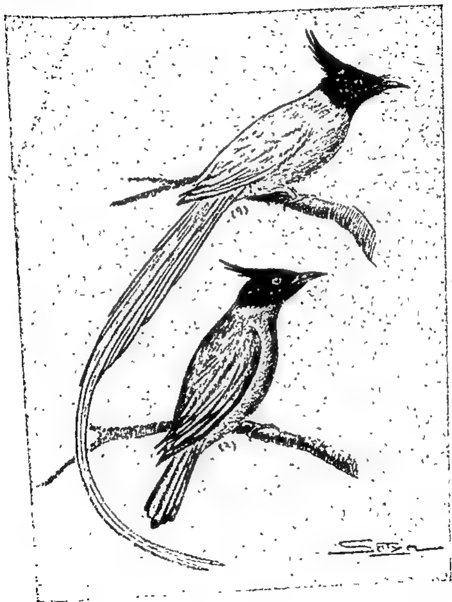
गाँवों में एक दूसरी मक्खीमार चिड़िया देखी जाती है, जिसे

जर्द फुदकी कहते हैं। उत्तर भारत में यह जाड़े के दिनों में आती है। इसका सिर और छाती भूरे रंग की और बाकी शरीर कुछ हरापन लिये हुए पीला होता है। हाँ, पूंछ का रंग बादामी। यह गौरैये से भी छोटी होती है। जर्दफुदकी और बातों में तो मछरिया के समान है, पर न तो दुम को उसकी तरह फैलाती है, न अलाप भरती है। दिनभर ज़ोरशोर से यही बोलती रहती है कि "फेंक-वही फेंक-वही"। यह अपना घोंसला इधर नहीं बनाती। उसका समय आने पर पहाड़ों की ओर चल देती है।



शाह बुलबुल

इसके और भी कई नाम हैं जैसे हुसैनी बुलबुल, सुल्तान बुलबुल, दूधराज इत्यादि। आकार-प्रकार में यह बहुत-कुछ बुलबुल से मिलता-जुलता है, पर है यह मक्खीमार जाति का। भारतवर्ष में पचास से भी अधिक प्रकार के मक्खीमार पक्षी मिलते हैं। इनमें सबसे प्रधान शाह बुलबुल है। यह अफ़गानिस्तान से सीलोन तक पाया जाता है। पर इस देश के ही भीतर स्थान बदलता रहता है। संयुक्त प्रान्त में शीतकाल बिताकर गरमी के दिनों में और क चल देता है। उत्तर बिहार में यह मार्च के अन्त में आता है औ प्रायः अक्तूबर तक रहता है। पर एक बात है। जाते समय सब-के सब नहीं चले देते। कुछ रह जाते हैं, इसीलिये कहीं-कहीं यह साल भर देखा जाता है।



शाहबुलबुल

शाह बुलबुल बड़ा ही सुन्दर पक्षी है। इसके सिर पर भी चोटी, या कल्गी होती है। बचपन में सिर और चोटी का रंग काला रहता है, और नीचे के हिस्सों का सफ़ेद-सा। बाकी शरीर का रंग बादामी, या कुछ लाल। मादा का तो यही रंग रह जाता है। पर नर के विषय में यह नहीं कहा जा सकता। दूसरा वर्ष चढ़ते ही वह अपने पर बदलता है। उस समय उसकी पूँछ के बीचवाले दोनों पर प्रायः १६ इंच लंबे हो जाते हैं, शरीर से लम्बाई में प्रायः दूने। तीसरे वर्ष इसके लाल या बादामी पर, सफ़ेद होजाते हैं। हाँ सिर और चोटी का रंग काला ही बना रहता है। थोड़े समय तक नर का रंग कुछ सफ़ेद और कुछ बादामी रहता है। चौथे वर्ष धड़ और दुम बिलकुल सफ़ेद हो जाती हैं, और यह रंग उसके बाद भी रह जाता है। अपनी लम्बी दुम के कारण यह विशेष सुन्दर दीखता है। हवा में वह किसी गुड्डी या पतङ्ग की पूँछ की तरह फड़फड़ाती चलती है।

शाह बुलबुल के पैर कमज़ोर होते हैं। यह ज्यादा चल फिर नहीं सकता। उड़ते हुए ही शिकार को पकड़ता है। मक्खी, खटकीड़ा, चींटी, कीड़े-मकोड़े यही इसके खाद्य पदार्थ हैं। इसमें स्फूर्ति की कमी नहीं। मछरिया की तरह जानदार होता है, बराबर खुश रहता है। अपनी खुशी ज़ाहिर करने के लिये कण्ठ खोल कर गाने लगता है। हां, हम यह जरूर कहेंगे कि कभी-कभी इसकी बोली कानों को कर्कश लगती है।

उत्तर भारत में शाह बुलबुल के अंडे देने का समय मई से जुलाई तक है। दक्षिण में मार्च से अप्रैल तक। घोंसला छोटे प्याले की शक्ल

का छिछला-सा होता है। घास-फूस को मकड़ी के जाले से बांध कर ही यह उसे तैयार करता है। उसमें कभी-कभी घोड़े की पूंछ के बाल भी मिलते हैं। घोंसला प्रायः आम के दरख्त पर मिलता है। अंडों की संख्या तीन-चार होती है और उनका रंग गुलाबी। उनपर कुछ लाल-लाल बुंदकियां भी होती हैं। नर और मादा दोनों बारी-बारी से अंडे सेते हैं और बच्चों को खिलाने-पिलाने में भी दोनों एक दूसरे का हाथ बंटाते हैं। जिस समय नर अंडे सेता है उस समय उसकी लंबी लहरदार पूंछ घोंसले से नीचे लटकती रहती है।

हम यह कहना भूल ही गये कि शाह बुलबुल की नाक के ऊपर कुछ लंबे-से बाल होते हैं, जो कभी-कभी चोंच के सिरे तक पहुँच जाते हैं।



चंडूल

—++++—

इस जाति के पक्षी आसमान में गाने के लिये प्रसिद्ध हैं। खूब ऊपर चले जाते हैं और वहीं अलापने लगते हैं। आपने इसको किसी शौकीन के पिंजरे में देखा होगा। वास्तव में ऐसे पक्षी को क़ैद रखना बेरहमी है। पिंजरे में यह कभी दिल खोलकर नहीं गाता। उसके लिये तो इसे खुली हवा चाहिए और ज़मीन आसमान के बीच काफ़ी ऊंची जगह चाहिये। अंग्रेज़ी के महाकवि 'शेली' ने जिस Skylark को सम्बोधन कर अपनी वाणी को अमर कर दिया है, वह इसी जाति का है, पर साधारण चंडूल की तरह इसके सिर पर चोटी नहीं होती। हां, यह इसकी अपेक्षा बहुत दूर ऊपर जा सकता है और इससे कहीं अच्छा गा भी सकता है।

आकार मे चंडूल गौरैये से कुछ ही बड़ा होता है, पर उसकी अपेक्षा दुबला-पतला दीखता है। इसका रंग खाकी होता है। शरीर पर कुछ पीले और कुछ काले-से चिह्न भी पाये जाते है। सिर पर छोटी-सी चोटी होती है। जमीन से तीस-चालीस फ़ीट ऊपर उठकर यह गाने लगता है, और थोडी देर बाद गाते हुए नीचे आ-जाता है।

इसका घोंसला देखना हो तो गरमो के दिनों में उसकी तलाश कीजिए। घास-फूस का बना होता है। पर कभी-कभी उसमें बाल या पशम या चिड़ियों के नरम पर भी पाये जाते हैं। आकार में छोटा-सा छिछला प्याला समझिए। चंडूल अपना घोंसला पेड़ पर नहीं ... पर बनाता है और उसकी बनावट ऐसी बेतरतीब होती है ... उठाते ही उसके ताने-बाने अलग-अलग होने लगते हैं। ... प्रायः तीन अंडे देती है। इनका रंग सफ़ेद-सा होता ...

अगिया

अगिया भी इसी जाति का है। ... हों तो आप वहां इसकी तलाश कर ... दोनों का रंग कुछ कत्थई होता है, ... देख सकते हैं। इसका स्वभाव यह ... वहां से उड़कर प्रायः बीस ... हुई फिर अपनी जगह आ ... फिर उड़ेगी—प्रायः घण्टे-भर

जुठौली

इस प्रसंग में एक और छोटी चिड़िया का उल्लेख करना है, जिसे कहीं घोरा, कहीं जुठौली कहते हैं। यह भी पड़ती ज़मीन में ही रहती है। इसे आप प्रायः झुण्ड में ही पायेंगे—सात या आठ एक-साथ। यह गौरैये से बहुत छोटी होती है पर चोंच वैसी ही मोटी समझिये। पैर छोटे होते हैं, और शरीर चौड़ा या चिपटा-सा। नर और मादा का रंग एक-सा नहीं होता। मादा बादामी रंग की होती है। नर का सिर भूरा होता है, पीठ हलके बादामी रंग की। नीचे के हिस्से खैर के रंग के—प्रायः काले होते हैं। आधी गरदन भी इसी रंग की होती है। और ठोड़ी से आंख तक एक काली धारी होती है। यह चिड़िया ज़मीन पर बैठी रहती है और बीच-बीच में उड़के कुछ ऊपर जाती और फिर नीचे आती है।

सभी प्रकार के चंहूल कीड़े-मकोड़े और तृण के बीज खाकर रहते हैं।



तीतर

—++++—

तीतर, बटई, लवा न बांचे
सारस, कूज, पुछार जो नाचे ।

—जायसी

यूरोप और एशिया में शायद ही कोई देश हो जहां तीतर न पाया जाता हो। भारतवर्ष में इसकी दो उपजातियां मिलती हैं—एक तो चितकबरा तीतर और दूसरा काला तीतर।

चितकबरा तीतर ही अधिकतर पाया जाता है। यों तो इसका रङ्ग बादामी होता है, पर शरीर पर कुछ स्याह और सफ़ेद धारियों के होने से यह चितकबरा कहा जाता है। सिर पर ऐसी धारियां नहीं होतीं—उसका रङ्ग कुछ कत्थई-सा होता है। डैनों के कुछ पर भी कत्थई रंग के होते हैं और पैर लाल।

बहुत ही चंचल पक्षी है। उड़ने की शक्ति तो कम होती है, पर दौड़ने में कमाल करता है। इसके डैने छोटे होते हैं, और शरीर भारी। शायद यही कारण है कि तेज़ी से उड़ नहीं सकता। यह गेहूँ या धान के खेतों में जाल से फँसाया जाता है।

तीतर का आहार है—कीड़े-मकोड़े और बीज। जाड़े के दिनों में पांच-छः तीतर एक झुंड में चलते-फिरते पाये जाते हैं और शिकार के लिये खेतों में जा पहुँचते हैं।

सुबह-शाम तीतर ज़ोर-शोर से 'पतीला, पतीला' बोलता है। कुछ लोगों को इसकी बोली बहुत प्यारी लगती है और वह इसीलिये इसे पालते हैं। पर इसमें और भी दो गुण होते हैं, जिनके कारण यह कुछ लोगों के दिल में घर कर लेता है। एक तो यह अपने स्वामी का ऐसा अनुरक्त भक्त हो जाता है कि छाया की तरह उसके पीछे-पीछे लगा रहता है। दूसरे तीतर का नर लड़ने में बहादुर होता है और बात-की बात में खम ठोंक कर दूसरों से भिड़ पड़ता है। आपने देखा होगा—तीतर के शौकीन हाथ में पिंजरा लिये एक अजीब आन-बान से जा रहे हैं और तीतर उन के पीछे-पीछे दौड़ रहा है।

तीतर के अंडे देने का समय मार्च से जून तक है। कभी-कभी मादा सितम्बर और नवम्बर के बीच दूसरी बार अंडे देती है। घोंसला ज़मीन में गड्ढा-सा खोद के तैयार किया जाता है। कभी-कभी उसमें थोड़ी घास भी बिछी रहती है। अंडों की संख्या छः से नौ तक होती है, और उनका रंग प्रायः सफ़ेद होता है।

काला तीतर देखने में कम पाया जाता है। नाम ऐसा होने पर भी

यह पूरा काला नहीं होता। काले परों पर बहुत से सफ़ेद और बादामी रंग के दाग़ या धब्बे होते हैं। नर के गले में कुछ लाल रंग की चौड़ी कंठी-सी होती है। मादा देखने में नर जैसी खूबसूरत नहीं होती। चितकबरा तीतर से इसका बोल बिलकुल भिन्न होता है। कुछ लोगों का कहना है कि यह "लहसुन-प्याज-अदरख" बोलता है। पर दूसरे कहते हैं कि नहीं, इसकी बोली है "सुभान-तेरी-कुदरत"! मालूम नहीं सच्ची बात क्या है।



बटेर



बटेर छोटी-सी चिड़िया है जो तीतर की तरह धान, गेहूँ इत्यादि के खेतों में पाई जाती है। बराबर धूप से बचना चाहती है। आकार में गौरैये से बड़ी नहीं होती। रंग बहुत कुछ कत्थई होता है, पर पीठ पर सफ़ेद धारियाँ होती हैं। सुनते हैं यह भी ऋतु के अनुसार रंग बदलती है।

बटेर को हम अपने गाँव में सालभर नहीं देखते। यह सिर्फ़ जाड़े के दिनों में नज़र आती है। बड़ा डरपोक पक्षी है। मनुष्य की आँखों से ओझल रहना चाहती है, फिर भी इसकी जान नहीं बचती। बात यह है कि इसका मांस बड़ा पौष्टिक समझा जाता है इसलिये लोग खोज-खोज कर इसे फँसाते या मार डालते हैं। खेतों में बटेर अक्सर जाल में फँसाई जाता है।

बटेर हिन्दुस्तान से अरब तक मिलती है। कहीं-कहीं लोग इसे लड़ाने के लिये भी पालते हैं।

बनमुर्गी

—++++—

यह चिड़िया आकार-प्रकार में छोटी मुर्गी से मिलती-जुलती है। इसीलिये इसे बनमुर्गी कहते हैं, पर यह रहती है पानी के किनारे और वहीं शिकार भी करती है। आपके गाँव में अगर कोई तालाब या नदी हो और उसके आस-पास झाड़ी या बंसवाड़ी हो तो आपको उसमें बनमुर्गी मिल सकती है। यों तो यह दूर से काली-सी दीखती है, पर इसका सारा शरीर काला नहीं होता। मुँह, गला और छाती सफ़ेद, चोंच का रंग हरापन लिये हुए, दुम के नीचे कुछ लाल पर—यही थोड़े में इसकी पहचान है। नर और मादा देखने में एक-से ही होते हैं। दुम को यह बराबर उठाये चलती है। इसी लिये आप नीचे के लाल परों को आसानी से देख सकते हैं। बंगाल में इसे शायद 'डाहुक' कहते हैं।

बनमुर्गी बड़ी सतर्क चिड़िया है। जहां इसे मालूम हुआ कि कोई इसकी ओर एक टक देख रहा है, झट झाड़ी में जा घुसी। पर इसे डरपोक नहीं कह सकते। लोग जल में स्नान कर रहे हैं और किनारे बनमुर्गियां निर्भय निःशंक विचरण कर रही हैं और परस्पर बातचीत कर रही हैं, ऐसा दृश्य प्रायः देखने में आता है।

इसका चीत्कार कभी-कभी कड़ा भयंकर होता है। कक-कक, कोआ-कोआ, करते करते यह कुक-कुक करने लगती है। बरसात में खास कर यह ज़ोर-शोर से बोलती है। संभव है, बच्चों के लालन-पालन के दिनों में यह हर्षध्वनि करती है। पर इसकी बोली बड़ी ही कर्कश होती है। रात को तो कभी-कभी लोगों को इसका पड़ोस में रहना बड़ा ही अखरता है।

जल के किनारे चरनेवाले पक्षी संध्या-समय उड़ कर अपने-अपने घर चले जाते हैं। बनमुर्गी उड़ने में बहुत कमज़ोर होती है, इसीलिये दूर नहीं जा सकती। जहां दिन भर शिकार करती है, वहीं रात बिताती है। वैशाख से ही घोंसला बनाने लगती है। घोंसला झाड़ी, बंसवाड़ी में या ताड़ के पेड़ पर होता है। आप पूछेंगे कि जब उड़ने में कमज़ोर है तब इतने ऊँचे पेड़ पर अपनी अटारी क्यों बनाती है? वास्तव में यह उड़ कर वहां नहीं जाती। ताड़ के पेड़ पर चढ़ जाना इसके लिये कठिन नहीं, इसलिये जो काम डैनों से नहीं निकाल सकती वह पैरों से निकालती है। घोंसला बड़ा-सा होते हुए भी बेढंगा होता है। वह वृक्ष की टहनियों का बना होता है।

मादा चार अंडे देती है। इनका रंग गुलाबी लिये हुए सफ़ेद होता है, पर इनपर लाल, बैंगनी और बादामी रंग की बुंदकियां होती हैं। बच्चे बिलकुल काले होते हैं। अंडों से निकलते ही घूमने-फिरने लगते हैं। इनके संबन्ध में एक बात कुछ आश्चर्य की है। इन्हें उड़ना देर से आता है, पर तैरना बहुत पहले आ जाता है। प्रश्न यह है कि ये पेड़ से नीचे कैसे उतरते हैं? कुछ लोगों का खयाल है कि मां इन्हें अपनी चोंच या चंगुल में पकड़ कर या पीठ पर चढ़ा कर नीचे ले आती है। पर किसीने यह अपनी आंखों देखा नहीं है। जेठ या आषाढ़ में बनमुर्गी के बच्चे निकलते हैं। उस समय कुछ लोग इस बात की जाँच करें तो पता चल सकता है।



राजालाल

—++++—

यह झुंड में चलनेवाली छोटी चिड़िया है। आकारमें प्रायः गौरैये के बराबर समझिये, यद्यपि इसकी पूंछ कुछ ज्यादा लम्बी होती है। पेड़ की ऊँची डालों पर ही समय बिताती है। पर बड़ी चंचल चिड़िया है, इसलिये परिव्राजकों की तरह चलती-फिरती रहती है। कहीं आसन जमाके नहीं बैठती। पाठक अतिथि-शब्द का अर्थ ज़रूर जानते होंगे। वास्तव में अ-तिथि वही है जो किसी जगह एक रात से अधिक न ठहरे। राजालाल भी हमारे गांव का प्रायः ... तिथि है। हां, जब घर बांधने के दिन आते हैं तब आपको, ... लिये, कहीं स्थिर होकर ज़रूर रहना पड़ता है।

... जा चुका है कि राजालाल झुंड में चलते हैं। पर ... दो से अधिक नहीं होता। इससे

में नज़र आता है। इसका रंग किसी पक्षी में लाल और किसी में पीला होता है। वास्तव में पीली गुलथीवाली टिटिहरी की जाति ही अलग है। आँख के पास की गुलथी के रंग को छोड़ और बातों में दोनों समान-ही होती हैं। टिटिहरी की बोली विलाप-सी जान पड़ती है और यही कारण है कि यह अपशकुन मानी जाती है। टिटिहरी और कुररी एक ही पक्षी के नाम हैं, यद्यपि कुछ लोग ऐसा नहीं मानते।

यह पक्षी ज़मीन पर दौड़कर कीड़ों का शिकार करता है। इसके अंडा देने का समय मार्च से अगस्त तक है। पर इसके लिये नर या मादा कहीं घोंसला नहीं बनाती। यह ज़मीन पर ही अंडे देती है। हाँ, उनकी रक्षा करने के लिये इन्हें विशेषतः सावधान रहना पड़ता है। अप्रैल या मई के महीने में आप कहीं टिटिहरी को देर तक बैठे देखें तो समझ जाइए, कि वह अपने अंडे से रही है। अंडों की संख्या चार होती है और उनका एक छोर नुकीला-सा होता है। चारों अण्डे इस हिसाब से रक्खे जाते हैं कि उनके नुकीले छोर आपस में मिल जाते हैं और उनके संयोग से + चिह्न-सा बन जाता है। बच्चे बहुत सुन्दर होते हैं और जन्म लेते ही दौड़ने लगते हैं। पर अगर आप उन्हें छेड़ेंगे तो उनके माँ-बाप अपनी रुलाई से आपको रुलाये बिना न रहेंगे। दिन में न हो सका तो रात को आपके मकान के ऊपर मंडरायेंगे और अपने करुण-क्रन्दन से आपकी और आपके पड़ोसियों की नींद उचटा देंगे।

या एक जोड़े से, सप्ताह भरमें, १६००० मच्छड़ हो जायेंगे। गनीमत है कि पक्षियों के आहार में, मनुष्य के ऐसे प्रत्यक्ष और परोक्ष शत्रु भी शामिल हैं और उस लिस्ट पर इनका स्थान काफी ऊंचा है। ग्रेट ब्रिटन में दोयल या दामा की जातिवाले पक्षियों की संख्या बीस लाख से पचास लाख तक बताई जाती है। हिसाब लगा कर देखा गया है कि अप्रैल, मई और जून इन तीन महीनों में ही वहां के ये पक्षी ६०,०००,०००,००० से अधिक कीड़ों का कलेवा कर जाते हैं। अब हमारे पाठक अच्छी तरह समझ गये होंगे कि राजालाल जैसे पक्षियों को हम क्यों मनुष्य का परम हितकारी कहते हैं।



बगला



मानसरोवर ही मिलैं हंसनि मुकता भोग,
सफरिन भरे 'रहीम' सर विपुल बलाकनि जोग ।

जो सच्चे योगी-यती हैं उनके विषय में कहा जाता है कि वे संसार-मात्र से ध्यान समेटकर परमात्म-चिंतन करते हैं। वास्तव में एकाग्र-चित्त हुए बिना ऐसे कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती। पक्षियों के लिये आध्यात्मिकता का कोई अर्थ नहीं। उनकी सारी इच्छायें, सारी क्रियायें भौतिक संसार से ही सम्बन्ध रखती हैं। उनके ध्यान का विषय बहुतकर वह भक्ष्य जीव या पदार्थ होता है जिससे उनकी जीवन-रक्षा हो सकती है। "ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा"

यह बात उनके सम्बन्ध में भी कही जा सकती है, पर यह ज़रूर है कि उन्हें जिसका दीदार चाहिये वह परमात्मा नहीं, परमात्मा का सिरजा हुआ, मेढक या मछली जैसा, कोई प्राणी है।

शान्ति और शिष्टता की मूर्ति बनकर, एक मटमैले रंग का पक्षी, बड़ी देर से झील के किनारे बैठा हुआ था। पैर पानी में थे, सिर दोनों कन्धों के बीच ढक-सा गया था, रंग-ढंग से जान पड़ता था कि वैराग्य के वशीभूत होकर यह विहंग, किसी कठोर साधना के लिये, ऐसी जगह आ बैठा है। न तो वह ज़रा भी हिलता-डुलता था, न इधर-उधर देखने का नाम लेता था। उसे देखकर यही कहना पड़ता था कि एकाग्रता या चित्त की वृत्तियों का निरोध हो तो ऐसा हो! पर अन्त में वह कुछ-का-कुछ निकला। एक मेढ़की सामने आते ही उसकी सारी कलई खुल गई। उसने अपनी पूरी गरदन फैलाके, लम्बी चोंच से उसे बात-की-बात में पकड़ लिया और उसका एक ही ग्रास बना डाला। अब मालूम हुआ कि जिसे देखकर हमारी वह धारणा हो रही थी वह बनावटी रंग-रूप था। यह सारी ध्यान-मुद्रा बगला-भगतजी की थी जिनसे हम अपने पाठकों को यहाँ परिचित करना चाहते हैं।

इसके डैने सफ़ेद होते हैं, पर जिस समय यह बैठा रहता है उस समय वे कुछ मटमैले परों से ढक जाते हैं। इसकी ठोड़ी, गला और छाती का कुछ अंश भी सफ़ेद होते हैं, पर उनपर बादामी धारियाँ पाई जाती हैं। इसकी आँखें पीली होती हैं, और चोंच तिरंगी, अर्थात् जड़ में नीली, बीच में पीली-सी और सिरे के पास

काली। इसके पैर हरापन लिये हुए धूसर रंग के होते हैं। गरमी के दिनों में पीठ का रंग कुछ लाल हो जाता है। इसकी नज़र बड़ी तेज़ होती है, यद्यपि भूल से कुछ लोग इसे अन्धा समझते हैं!

बगला शाकाहारी पक्षियों में नहीं है। मेढक, केकड़ा, छोटी मछली, पानी के कीड़े—बस ऐसे ही जीवों को इसका आहार समझिए। पानी से इसका रंग इतना मिलता-जुलता है और यह इतना शान्त या निस्तब्ध रहता है कि जलचर प्राणी भी भ्रम में पड़ जाते हैं और इसे कुछ और ही चीज़ समझकर निर्भय इसके पास चले आते हैं।

बगला शिकार तो अकेला ही करता है, पर रात को सोता है झुंड में। उस समय हम पचास-साठ बगलों को एकत्र देख सकते हैं। प्रायः ऐसे पेड़ पर रात बिताते हैं जो किसी झील या नदी के किनारे होता है। कभी-कभी अच्छी डाल पर सोने के लिये, आपस में लड़-झगड़ भी पड़ते हैं। इनकी बोली कोंक-कोंक-सी होती है।

इनके घोंसला बनाने का समय अप्रैल या मई महीना है। एक ही पेड़ पर कई जोड़े घर बाँध लेते हैं। घोंसले के लिये इन्हें सिर्फ़ कुछ टहनियाँ जुटानी पड़ती हैं, पर उसे देखकर यही कहना पड़ता है कि वह अनाड़ी का बनाया हुआ है। अंडों की संख्या चार होती है और उनका रंग हरा-सा होता है। बच्चे आकार को छोड़ और बातों में माँ-बाप के ही समान होते हैं। बया भी अक्सर उसी पेड़ पर अपना झूला लगाता है जिस पर बगला अपना बंगला तैयार करता है।

गाय-बगला

—++++—

इस पक्षी को बगले का रिश्तेदार समझिए। हिन्दी में इसके और भी नाम हैं;—जैसे सुखिया बगला, बादामी बगला, लाल बगला इत्यादि। मशहूर नाम गाय-बगला ही है। यह अक्सर गाय-बैल की पीठ पर बैठके या उनके साथ-साथ चलके शिकार करता है। उनके चलने-फिरने से जो कीड़े-पतिंगे घबरा कर इधर-उधर भागते हैं उन्हींको यह अपना मुख-ग्रास बनाता है। कितना चालाक है! शेर के शिकार में कभी-कभी ऐसे आदमियों की ज़रूरत पड़ती है जो हो-हल्ला मचा कर उसे प्रकट या प्रत्यक्ष होने के लिये बाध्य कर दें। गाय-बैल इस शिकारी के लिये यही काम करते हैं।

वर्षा-काल को छोड़ यह बराबर सफ़ेद बना रहता है। इसके पैर स्याह और इसकी चोंच पीली होती है। फिर इसे बादामी या

लाल बगला क्यों कहते हैं ? बात यह है कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने से कुछ ही पहले यह अपने परों को बदल देता है। उस समय जो नये पर उगते हैं उनका रंग बादामी होता है। बरसात के दिनों में इसके सिर, गरदन और पीठ पर नारंगी रंग के कुछ खास पर निकल आते हैं जो देखने में बड़े ही खूबसूरत होते हैं। हमारे राजा-महाराजा अपनी पगड़ी या मुकुट में ऐसे ही पक्षियों के परों की कलगी लगाते हैं। इनकी सुन्दरता इस पक्षी के लिये संहारक सिद्ध होने लगी थी, पर सरकार ने अब क़ानून पास कर इसकी रक्षा की व्यवस्था कर दी है।

गाय-बगला किसानों का परम उपकारी है। जूँ-जैसे छोटे-छोटे कीड़े अक्सर ढोरों का खून चूसा करते हैं। गाय-बगला इन सबको 'चुग' लेता है। पूसा में एक बार इस बात की परीक्षा की गई थी कि इसके आहार के कीड़ों में कितने ऐसे हैं जो खेती की दृष्टि से हानिकारक कहे जा सकते हैं। तीन पक्षियों के खाये हुए १६६ कीड़े बाहर निकाले गये थे। इनमें छः को छोड़ कर बाक़ी सब-के-सब उसी श्रेणी के थे। पर गाय-बगला छोटी मछली या मेढकी जैसे जीवों को भी हज़म कर सकता है। और बराबर ढोर के ही साथ रहता हो यह बात भी नहीं है। कभी सूअर पर कृपा करता है तो कभी मगर पर। किसीका कुटकी से पिंड छुड़ा देता है तो किसीका पिस्सू से।

गाय-बगला उन पक्षियों में है जिन्हें हम गोष्ठी-प्रिय कह सकते हैं। जब घर बाँधने के दिन आते हैं तब तो उसकी यह गोष्ठी-प्रियता और भी बढ़ जाती है। नदी के कछार या दलदल के पेड़ों पर रहने-

वाले तरह-तरह के पक्षियों को हम उस समय एकत्र पाते हैं। इतना ज़रूर है कि घोंसला बनाने में जैसा बगला है वैसा ही गाय-बगला! अंडों की संख्या तीन से पाँच तक होती है और उनका रंग भी वही होता है जो बगला-भगत जी के अंडों का।



मोर

—++++—

जयति अपूरब घन कोउ लखि नाचत मन-मोर
—भारतेन्दु

शिखिनि ! विरस-वदना हो बैठी तरु-शाखा पर तू कैसे ?
तेरे प्राण न देख श्याम को रोते हैं क्या मुझ जैसे ?
—"विरहिणी व्रजांगना"

कुछ लोगों को इस बात पर आपत्ति ... कि
जैसे पक्षी को इस पुस्तक में आखिरी सीट
विश्वास दिलाता है, इसका कारण किसी ...
नहीं है। न तो उसे कौए से दोस्ती है न



मोर

इतनी ही है कि कौआ उसे "नित उठ दर्शन" देनेवालों में है और मोर उसके गाँव के इर्दगिर्द कोसों में नहीं है। भारतवर्ष के पक्षियों से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तक में स्थान पाने का वह विशेष अधिकारी न होता तो हम उसकी चर्चा भी न करते। हमने प्रायः उन्हीं पक्षियों का परिचय दिया है जो हमारे गाँव में मिलते हैं। हाँ, अगर हम राजस्थान-निवासी होते तो पहला स्थान मोर को ही देते। मोर की रक्षा के विषय में राजपूताना सम्भवतः और प्रान्तों से आगे है। मरुभूमि को मोरभूमि कहना कुछ हद तक ठीक ही होगा।

एशिया महाद्वीप ही मोर की जन्मभूमि है—खासकर भारतवर्ष और जावा। पूरब से ही यह पश्चिम को गया है और इधर की ओर कितनी ही चीज़ों की तरह बे-मिसाल साबित हुआ है। कहना चाहिए कि यह पूरब के उन मोतियों में से है जिनसे पश्चिम अपना दामन भरता आया है।

इसके रंग-रूप के वर्णन की चेष्टा करना एक प्रकार की धृष्टता है। हम तो यही मान लेंगे कि हमारे सभी पाठक उसे अपनी आँखों देख चुके हैं और उनके लिये उसका वर्णन अनावश्यक है। यह उन पक्षियों में है जो डील-डौल में बड़े और भारी-भरकम होते हैं। इसकी दो विशेषतायें हैं इसकी शिखा और इसकी पूँछ। वास्तव में हम जिसे पूँछ कहते हैं वह असली पूँछ नहीं है। इसे पूंछ का परदा या ओहार कहना चाहिए। मादा के यह आभूषण नहीं होता। इसमें कितनी ही 'आँखें' या चन्द्राकार बूटियाँ होती हैं जिनकी शोभा देखते ही बनती है। शिखा या चूड़ा नर और मादा दोनों के ही होनी

है। सिर, गरदन और छाती का रंग नीला होता है; असली दुम और डैनों का रंग कत्थई। मादा आम तौर से कुछ फीके रंग की होती है।

मोर का नाच मशहूर है। जिसने इसे अपनी आंखों नहीं देखा, वह प्राकृतिक जगत् का एक अनोखा दृश्य देखने के सुख से वंचित रहा। पर इस नाच का मर्म समझने के लिये पक्षी-जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली एक खास बात जानना आवश्यक है।

कबूतर गुटकता है, श्यामा गाती है, मोर नाचता है—इन क्रियाओं को आप निरर्थक न समझें। पशु-पक्षियों को अपनी प्राण-रक्षा और वंशवृद्धि के लिये तरह-तरह के उपायों का अवलम्बन करना पड़ता है। प्राणरक्षा का प्रश्न मुख्यतः आहार जुटने-जुटाने का प्रश्न है। इसलिये हम पक्षियों को सुबह से शाम तक (और उल्लू जैसे पक्षी को रात में) इस समस्या के हल में इतना मशगूल पाते हैं। पर विधि-विधान के पालन के लिये, उन्हें उदर-पूर्ति के बाद, इस महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर ध्यान देना पड़ता है कि उनकी जाति की सत्ता कैसे क़ायम रहेगी? अपनी संख्यावृद्धि के लिये सचेष्ट होना पक्षियों का सहज स्वभाव है। थोड़े में हम इसे पक्षियों के विवाह या दाम्पत्य का प्रश्न कह सकते हैं।

नर और मादा—थोड़े समय या बराबर के लिये—इस संबन्ध-सूत्र में बंधकर सृष्टि की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। पर यह काम दोनों की अपनी मर्ज़ी, अपनी स्वीकृति से होता है। मां-बाप इसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करते—सच तो यह है कि उन्हें इस बात की फ़िक्र भी नहीं होती कि उनके बच्चों का ब्याह कब, कहां

और कैसे होगा। न तो बीच-बचाव के लिये किसी 'घटक' की ज़रूरत पड़ती है न लेन-देन की कोई 'ठहरौनी' होती है। मादा को रिझाने के लिये नर अपनी गुण-गरिमा और अपने प्रेम का प्रदर्शन करता है और वह प्राचीन भारतवर्ष की स्वयम्वरा स्त्री की भाँति, अपना पति आपही चुन लेती है।

अपने प्रयत्न में नर-पक्षी की सफलता का अर्थ है उसका वंश-विस्त.र और उसकी असफलता का अर्थ है उसकी वंश-हानि। यही कारण है कि ऐसे मामलों में सावधान रहनेवाली प्रकृति ने उसे मादा की अपेक्षा, विशेष रूपवान और गुणवान् बनाया है। इस नियम के अपवादों की संख्या बहुत छोटी है।

कोयल, गौरैया, श्यामा, शाह बुलबुल, बया, मोर, मुर्गी आदि पक्षियों को ध्यानपूर्वक देखने से पता चलेगा कि रंगरूप, वेशभूषा, डीलडौल में मादा नर को नहीं पा सकती। रंगों की जो बहार पुरुष के परों में पाई जाती है वह स्त्री के परों में नहीं। पक्षियों के दाम्पत्य का समय वसन्त-काल है। इस समय नर की सुन्दरता देखते ही बनती है। उसके परों के रंग प्रायः बदल जाते हैं और उनमें एक निराली चमक-दमक आ जाती है। हाँ, मोर जैसे पक्षी सालभर एक-रंग रहते हैं। कुछ ऐसे भी नर-पक्षी हैं जो वसन्तकाल में और ही तरह की 'कायापलट' दिखाते हैं। इनके परों में कोई अन्तर नहीं पड़ता पर इनके दूसरे अंग थोड़े समय के लिये अपना रंग कुछ बदल देते हैं। किसीकी चोंच बादामी से पीली हो जाती है और किसीकी चोंच के ऊपर एक गुलथी-सी निकल आती है। इस प्रकार सज-

धज कर नर-पक्षी, अपने हावभाव से, मादा को अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा करता है, और विफल न हुआ तो उससे संवन्ध जोड़ कर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होता है।

मोर के नाच को भी उसका हावभाव समझिए। मस्ती के आलम में पक्षी स्वभावतः गाते और नाचते हैं। ऐसी क्रिया के द्वारा नर प्रायः अपनी कामुकता प्रकट करता है और अन्त में मादा का प्रेम-पात्र वन जाता है।

एक साहव लिखते हैं:—

"शान-गुमान वाले मोर का वह नाचना देखो! मन्द मँथर गति से मादा के पास जाता है और अपने 'पुच्छ' के परों को फैला कर गोल फलक-सा वना देता है। कुछ क़दम पीछे हट कर वह मोरनी को पहले इस चित्र-पटल का धुँधला अंश देखने को देता है। फिर एक-ब-एक ऐसा चक्कर खाता है कि तसवीर की पटरी उलट जाती है—और ही नज़ारा दीखने लगता है! चमक-दमक से भरी हुई ये हज़ारों 'आँखें' कहाँ से निकल पड़ीं और घनघोर घटा के नीचे जगमगाने लगीं? एक-एक मोर-चन्द्रिका में नीलम और फ़ीरोज़ा हाथ लगते हैं। ऐसी मनोरम आभा इस संसार में और कहाँ मिल सकती है? मोर का साज-वाज सचमुच लासानी है"।

भारतवर्ष में मोर के घर वाँधने और अंडे देने का समय मार्च से अक्टूवर तक है। उत्तर भारत में प्रायः मार्च से मई तक और सिलोन को छोड़ अन्यत्र, वर्षा-काल में। इसका घर या घोंसला वहुतकर ज़मीन पर ही होता है, कभी किसी झाड़ी में, कभी किसी

दरख़्त की छाँह में। जहाँ बाढ़ आने की सम्भावना होती है वहाँ यह अपना घर ज़रा ऊँची ज़मीन पर बाँधता है। कभी-कभी इसका घोंसला मकान के छप्पर पर भी पाया जाता है। सम्भव है, वह कहीं किसी पेड़ पर भी मिल जाय, पर ज़मीन से बहुत ऊँचाई पर नहीं। ज़मीन पर तो थोड़ी-सी मिट्टी हटाकर और घास-फूस या पत्तियों को बिछाकर ही यह अपने घोंसले का इन्तज़ाम कर लेता है। हाँ, जब ऊपर रहना पड़ता है तब कुछ और सामान जुटाना और मचान बाँधना आवश्यक हो जाता है। अंडों की संख्या दो से छः तक होती है—बहुत कर चार या पाँच। डेवर साहब लिखते हैं कि कभी-कभी आठ अंडे भी पाये जाते हैं। अंडों का रंग सफ़ेद होता है हाथी-दाँत का-सा। अंडे सेने का काम अकेली मादा करती है। इसमें प्रायः एक महीना लगता है।

